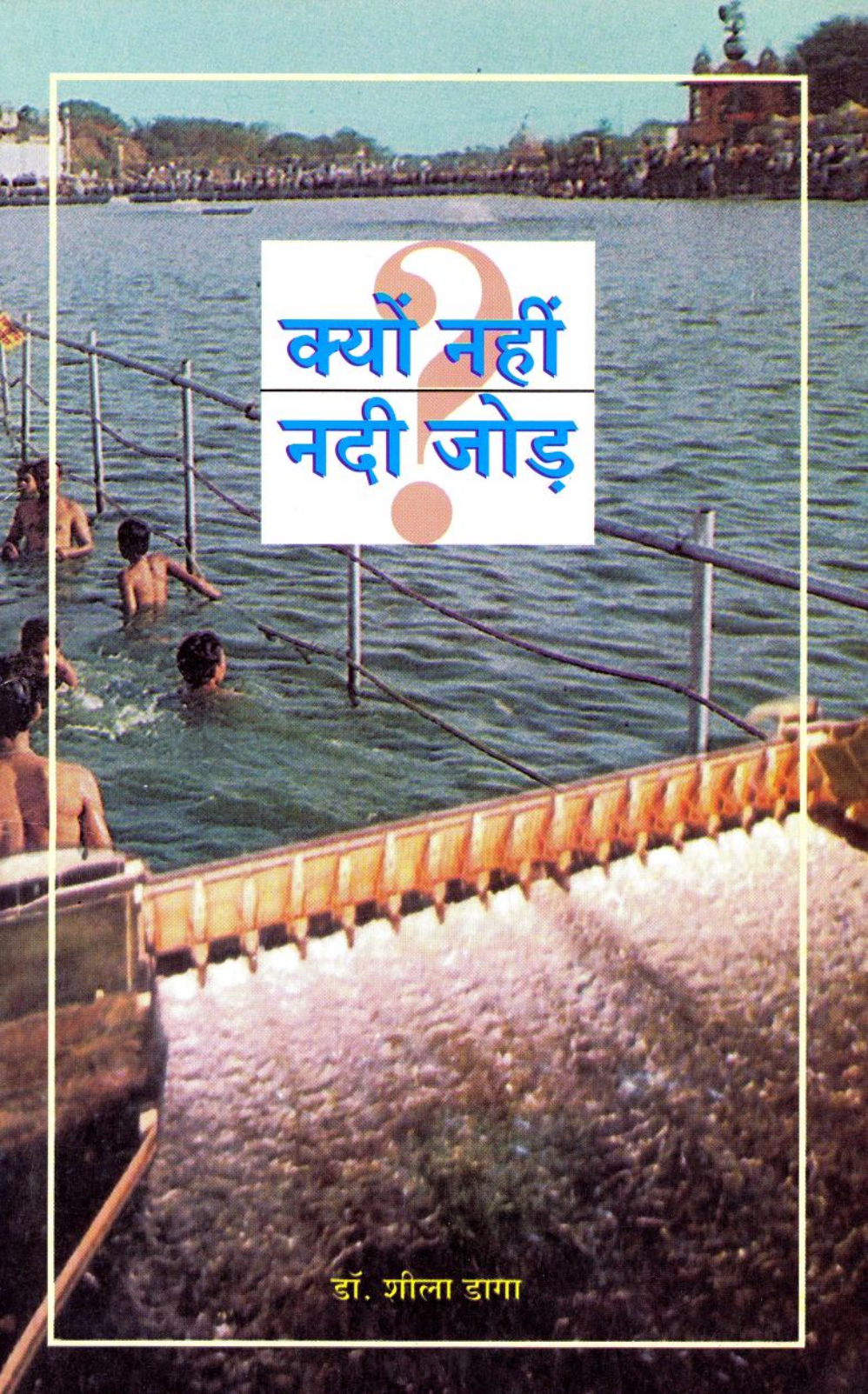
क्यों नहीं
नदी जोड़
डॉ. शीला डागा

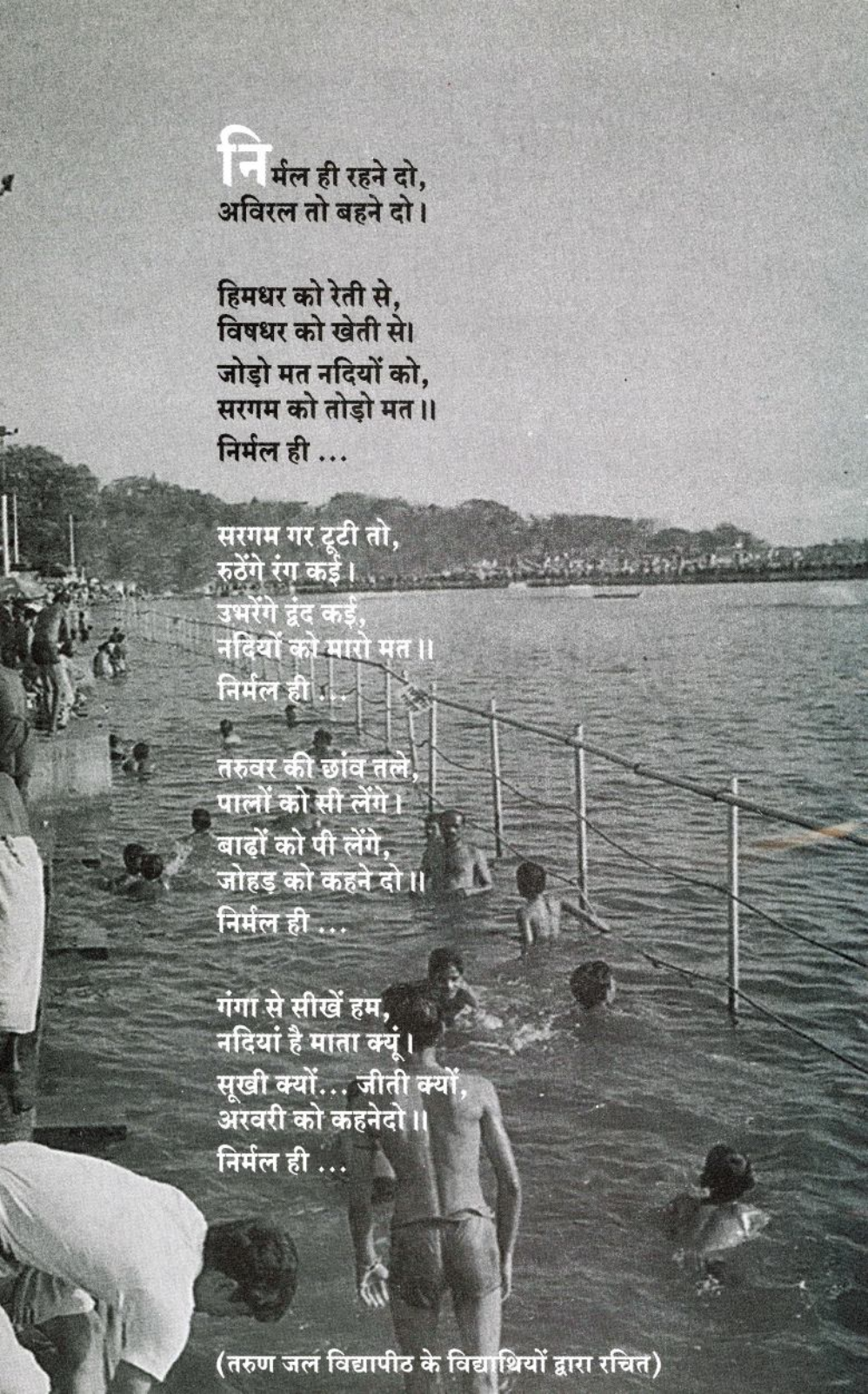

निर्मल ही रहने दो,
अविरल तो बहने दो।

हिमधर को रेती से,
विषधर को खेती से।
जोड़ो मत नदियों को,
सरगम को तोड़ो मत ॥
निर्मल ही ...

सरगम गर टूटी तो,
रुठेंगे रंग कई।
उभरेंगे द्वंद कई,
नदियों को मारो मत ॥
निर्मल ही ...

तरुवर की छांव तले,
पालों को सी लेंगे।
बाढ़ों को पी लेंगे,
जोहड़ को कहने दो ॥
निर्मल ही ...

गंगा से सीखें हम,
नदियां है माता क्यूं।
सूखी क्यों... जीती क्यों,
अरवरी को कहनेदो ॥
निर्मल ही ...

(तरुण जल विद्यापीठ के विद्यार्थियों द्वारा रचित)

क्यों नहीं नदी जोड़?

मनुस्मृति में नदी के बहाव को मोड़ने वाले तथा रोकने वाले को श्राद्ध आदि कर्म से त्याज्य बताकर दंड देने का प्रावधान है।

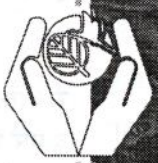

क्यों नहीं नदी जोड़?

प्रथम संस्करण
जुलाई, 2006

लेखन
डॉ. शीला डागा

संपादन
अरुण तिवारी

मूल्य
80 रुपए मात्र

प्रकाशक
तरुण भारत संघ
भीकमपुरा किशोरी वाया थानागाजी,
जिला : अलवर-301022
राजस्थान
फोन : 01465-225043, 0141-2393178
ई-मेल -watermantbs@yahoo.com

वितरक
जल बिरादरी
34/46, किरण पथ,
मानसरोवर, जयपुर-302020
ई-मेल -jalbiradari@gmail.com

रूपांकन एवं मुदण
कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर

प्रस्तावना

क्यों नहीं नदी जोड़? – बहन शीला डागा ने गहन अध्ययन करके यह पुस्तक लिखी

है। इस पुस्तक में नदी-जोड़, इससे पैदा होने वाले विवाद, पानी की लूट, समाज, संस्कृति की टूटन और विकल्प के सभी पहलुओं को समेटा गया है। पर्यावरणीय खतरे व आर्थिक असमानता को बढ़ाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय सत्ताधारी संस्थाओं का प्रभुत्व स्थापित करने की विश्व-सत्ता की कोशिश का ही एक नाम है : भारत की नदी-जोड़ परियोजना। दरअसल भारतीय जलनीति-2002 में ही निजी कम्पनियों को सौंपने की सरकारी मंशा जाहिर हो गई थी। पानी के लिए निर्माण, मालिकाना, संचालन, पट्टेदारी तथा परिवहन को निजी व व्यापारी हाथों को सौंपना पानी के मालिकाने हक का निजीकरण ही था। हालांकि अतीत में भारत के राजनेताओं की मंशा ऐसी नहीं थी।

पूर्व में तो सबसे पहले उदारीकरण को बढ़ावा देने वाली अगुवा सरकार का प्रधानमंत्री भी पानी को व्यापार की वस्तु बनाने का विरोधी था। 1992 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंहाराव जी ने रियो डि जेनेरियो के पृथ्वी शिखर सम्मेलन में पानी का व्यापार खोलने का विरोध किया था। 1997 में मोरक्को में आयोजित होने वाले पहले विश्व जल सम्मेलन तथा 2000 में नीदरलैण्ड में होने वाले दूसरे विश्व जल सम्मेलन में भी भारत सरकार ने पानी के निजीकरण को सहमति नहीं दी थी, लेकिन तीसरे विश्व जल सम्मेलन (क्यूटो जापान) में पानी के निजीकरण की बात जोरों से स्वीकृत हुई। भारतीय प्रधानमंत्री के प्रतिनिधि ने आगे बढ़कर मंजूरी दी। यह स्वीकृति ही नदी-जोड़ के काम को तेज करने का रास्ता बनी। हालांकि विश्व में अभी तक जहां भी नदी-जोड़ हुए हैं, कहीं लाभ नहीं हुआ। भारत में ऐसी कोशिशें सतलुज, व्यास का पूरा ढांचा तैयार होने के बाद भी पानी कहां मिला? विवाद की ये सब घटनाएं हमें सिखाती हैं कि भारत की बदलती हुई राजनीति में नदी-जोड़ एक बहुत बड़ा खतरा है। ऐसे खतरे को कौन आगे बढ़ा रहा है? मोटे तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं, अर्थ संगठन व बहुराष्ट्रीय कम्पनियां ही इसके पीछे दिखती हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें नदी-जोड़ जैसी परियोजना को जानना-समझना बहुत जरूरी है। वह इस पुस्तक से संभव है। अच्छा है कि यह किताब आंकड़ेबाजी में नहीं फंसी। यह पुस्तक बहुत मूलभूत ज्ञान व

व्यवहार को आधार बनाकर लिखी गई है। यही इसकी खूबी है। नदी जोड़ का विकल्प शामिल किए जाने से इस पुस्तक का महत्व बढ़ गया है। नदी-जोड़ बड़े बांधों के बिना नहीं हो सकती है। बड़े बांधों का इतिहास हमारे सामने है। हमें इस परियोजना के जो भी लाभ बताये जा रहे हैं, वे सब किसी भी तरह व्यवहार में हासिल होने वाले नहीं हैं। मैं अभी कुछ दिन पहले केन-बेतवा नदी जोड़ योजना के प्रस्तावित रास्ते की पूरी यात्रा करके लौटा हूं। यात्रा के दौरान कुछ समय नदी जोड़ योजना के मुख्य अभियन्ता तथा अधीक्षण अभियन्ता भी मेरे साथ रहे। मैंने जब भी उनसे इस योजना का आधार जानना चाहा तो वे हमें पानी का समान बंटवारा करने, बाढ़ और सुखाड़ से निपटने, परिवहन को बढ़ावा देने और नये रोजगार देने वाला बताकर चुप हो जाते थे। जब मैं नदी जोड़ के पक्षधरों के समक्ष अरवरी नदी के पुनर्जीवन का उदाहरण देकर बात करता हूं तो वे कहते हैं कि यह तरीका ठीक है, लेकिन उस तरीके से पानी का स्थान्तरण नहीं किया जा सकता। नदी जोड़... पानी के स्थानान्तरण का काम है।

मैं भारत सरकार की नदी-जोड़ परियोजना विशेषज्ञ कमेटी का भी सदस्य हूं। कमेटी की पहली बैठक से लेकर अब तक कहीं भी मुझे सरकारी तौर पर बोलने का मौका मिला... मैं इसकी खामियां बताता रहा हूं और पानी की समस्या के दूसरे और बेहतर विकल्प सुझाता रहा हूं। नदी-जोड़ किसी भी तरह से जल संरक्षण का जनोन्मुखी और विकेन्द्रीकृत विकल्प नहीं है। भारत में सबको पानी पिलाने और खेती व उद्योग की जरूरत पूरी करने का काम जल व भू-जल के संरक्षण, अनुशासित उपयोग एवं न्यायपूर्व बंटवारे से ही संभव है। इसी तरीके से भारत के समाज का जल पर समान हक कायम होगा; सबकी जरूरतें बराबरी से पूरी होंगी। अत: भारत सरकार को नदी-जोड़ पर एक बार और विचार करके देखना चाहिए। हमारे तालाब हमारी जरूरत व स्वावलंबन की कसौटी पर समय-सिद्ध व खरी संरचनाएं हैं। इन्हें ही अपनाकर भारत को जल संकट व जल-युद्ध से बचाने की तैयारी करनी चाहिए। इस पुस्तक को बहन शीला डागा ने बहुत मेहनत से लिखा है। उनके इस काम के लिए मैं उनका आभारी हूं। हमारे जल बिरादरी के साथी श्री अरुण तिवारी ने इस पुस्तक का संपादन किया है। मैं उनका भी ऋणी हूं।

राजेन्द्र सिंह

अध्यक्ष, तरुण भारत संघ

पाठकों से

यूं तो मैं श्री राजेन्द्रसिंह जी को पहले से ही जानती थी, लेकिन रमन मैग्सेसे पुरस्कार से सम्मानित होने के बाद राजेन्द्र जी का नाम अब ज्यादा लोगों की जुबां पर आ गया। पहले प्राय: जब राजेन्द्र जी के कार्य का जिक्र चलता, तो कई प्रकार की आलोचनाएं भी होती थीं। जब मैंने पानी के विशेषज्ञ माने जाने वाले अपने एक बहुत ही परिचित चीफ़ इंजीनियर से राजेन्द्र जी के कार्य की आलोचना सुनी तो वास्तविकता जानने की उत्सुकता और बढ़ गई। इसी मक़सद से मैं काफी पहले ही भीकमपुरा आना चाहती थी। संभवत: मैं और देर से आती, परन्तु एक और अनिवार्य कारण ने मुझे जल्दी ही तरुण भारत संघ के तरुण आश्रम में पहुंचा दिया। यहां मैं दो-तीन दिन के लिए ही आई थी। जब मेरे लौटने की बात हुई तो राजेन्द्र जी ने मेरे समक्ष कुछ लेखन कार्य करने का प्रस्ताव भी रखा। मेरा विषय तो संस्कृत है। अब तक उसी पर लिखती आई हूँ। अब चूंकि मेरे मन में यहां के सत्य से साक्षात्कार करने की उत्सुकता थी; अत: इससे बढ़िया मौका और क्या मिलता। मैंने नदी जोड़ परियोजना के भिन्न पहलुओं पर लिखने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

यह सच है कि इस पुस्तक को लिखने से तीन महीने पूर्व तक पानी के सन्दर्भ में मेरी कोई सोच... कोई दर्शन नहीं था। पानी की कमी.... बोतलबंद पानी खरीदना मुझे अखरते थे, लेकिन सच में पानी का अपना एक पूरा का पूरा दर्शन है... यह मैंने कभी सोचा भी न था। मेरी चिन्ता सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति के शोषण, देश में फैली अशिक्षा व बच्चों से उनका बचपनं छीने जाने के अलावा प्रत्येक स्तर पर व्यापक भ्रष्टाचार तक ही सीमित थी। मैं यह कभी नहीं सोच पाई कि इन सभी के रास्ते पानी से भी होकर जाते हैं।

यहां रहकर बहुत कुछ सीखा। सुनते-सुनाते और पढ़ते-पढ़ाते मैंने जाना कि कैसे नदी जोड़ परियोजना भारत सरकार के नेताओं, बड़े प्रशासनिक अधिकारियों और अंतर्राष्ट्रीय ताकतों की स्वार्थ-सिद्धि तथा भूगोल के विनाश का साधन बनने जा रही है। खैर! इस परियोजना में जो छिद्र नजर आये; जिनमें से पानी के बहकर नष्ट हो जाने का अंदेशा है; इस पर समाज की राय रखने के साथ-साथ हमारे भारत में नदियों के

संरक्षण और जल के संवर्द्धन का जो श्रेष्ठ रास्ता है, मैंने उसे भी इस पुस्तक में सामने लाने की कोशिश की है।

अब अन्त में मैं सबसे पहले अपने दत्तक पुत्र विवेक उमराव व उसकी जीवनसंगिनी क्लेयर को याद कर रही हूं; जिन्होंने मुझे अचानक एक दिन भीकमपुरा के तरुण आश्रम में बुला लिया। श्री राजेन्द्रसिंह जी की भी आभारी हूं कि उन्होंने मुझे इस बहुत ही तकनीकी कार्य के योग्य बना दिया।

अपने छोटे से मित्र अरुण तिवारी को तो याद करना ही पड़ेगा, जिसने मुझे इस विषय पर लिखने का रास्ता सुझाया और पुस्तक संपादन का दायित्व ले मुझे कृतार्थ किया। अरावली प्रबंधन संस्थान, जोधपुर के निदेशक श्री वरुण आर्य, कुछ शिक्षकों तथा व्यापार प्रबन्धन के छात्रों द्वारा इस कार्य में बहुत सहायता मिली। मैं सभी की कृतज्ञ हूं। तरुण भारत संघ के महामंत्री, उप सचिव, सभी कार्यकर्ता तथा तरुण जल विद्यापीठ के छात्रों का भी शुक्रिया अदा करना चाहती हूं, जिन्होंने अपनी-अपनी तरह से मेरा ज्ञान बढ़ाया एवं तरुण आश्रम में मेरे प्रवास को रुचिकर बनाया।

... और अन्त में मैं अपनी प्यारी सी मित्र जया मित्रा को याद कर रही हूं, जिनके द्वारा दिए गये बहुमूल्य सुझावों के बाद मैं आशान्वित हूँ कि यह पुस्तक अपने मकसद में सफल हो सकेगी। अपने दोनों बच्चों... विकास व स्मिता के परिवार से भी मुझे माफी मांगनी है कि मैंने उन्हें बहुत प्रतीक्षा कराई। बच्चों का मां पर सबसे पहले अधिकार होता है, लेकिन यह देश का ही नहीं... पूरी मानवता के हित का कार्य है, अत: वे सब मुझे क्षमा करेंगे।

पाठकों के सुझाव आमन्त्रित करते हुए मन में बहुत उत्सुकता है।

डॉ. शीला डागा
पूर्व प्राचार्य
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

भूमिका

गांधी जी ने कहा था – ''प्रकृति हमारी ज़रूरतों को तो पूरा कर सकती है, लेकिन हमारे लालच को नहीं ।''

आज उनकी इस चेतावनी को हम सच होता देख रहे हैं। मानव के लालच और लापरवाही ने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं प्रबंधन की नई चिन्ता खड़ी कर दी है। सबसे गंभीर संकट पानी और उसके दुष्प्रभाव से बिगड़ती सेहत का है; तिस पर तुर्रा यह कि विकसित देश आर्थिकी के 'मांग-आपूर्ति सिद्धान्त' पर नज़र गड़ाए बैठे हैं। वे दुनिया के पानी व शेष प्राकृतिक उत्पादों पर अलग-अलग बहाने व तरीके से कब्जा व लूट को बेसब्र हैं। चेहरा महाजन का है, लेकिन कर्म लुटेरों जैसे हैं। आज का विश्व तीन समुदायों में बंटा हुआ है। विकसित, विकासशील और अविकसित देश। भारत को अभी एक विकासशील देश का दर्जा प्राप्त है। राष्ट्रपति जी ने वर्ष-2020 तक भारत को विकसित राष्ट्र बनाने का सपना संजोया है। यूं मानव विकास सूचकांक के आधार पर वर्ष-2037 तक भारत के एक विकसित राष्ट्र होने की उम्मीद जताई गई है। इसका एक बड़ा आधार भारत के प्राकृतिक संसाधन हैं।

दरअसल भारत देश भौगोलिक दृष्टि से बहुत ही रंग-रंगीला है। कहीं ऊंचे-ऊंचे पर्वत हैं, तो कहीं पहाड़ों का नामोनिशान ही नहीं है। कहीं कई बड़ी-बड़ी बारहमासी नदियां बहती हैं, तो कुछ प्रदेशों को केवल बरसाती नदियों से ही काम चलाना पड़ता है। कुछ स्थानों में बहुत वर्षा होती है... लगभग 11 हजार, 400 मिलीमीटर... तो कहीं इसका औसत केवल पचास मि.मी. ही है। कहीं मिट्टी इतनी उपजाऊ है कि साल भर फसलें मिलती रहें और कहीं सिर्फ सूखे-लम्बे रेगिस्तान ही दिखाई पड़ते हैं। कहीं पूरे साल सर्दी पड़ती है और कहीं सर्दी होती ही नहीं। अनेक बोलियां, भिन्न-भिन्न लिपियां, अलग-अलग पहनावा, खानपान, जीव-जन्तु, रंग-रूप... सभी कुछ मनमोहक प्रतीत होता है। प्रकृति के वरदान भी यहां बहुत हैं । पानी की बात करें तो भारत में कुल मिलाकर पानी की कमी नहीं है। यहां औसत बारिश ठीक ही होती है, लेकिन पश्चिम के देशों की स्वार्थपरक नीयत, भारतीय समुदाय की गैर जिम्मेदारी, सरकार की नासमझी एवं

राजनीतिक पार्टियों की वोट बटोरकर सत्ता प्राप्त करने की लालसा ने मिलकर पानी के नए-पुराने संकट खड़े कर दिए हैं।

परम्परा से भारत का समाज अपनी जरूरत के हिसाब से पानी का संरक्षण करना जानता है। छोटे-बड़े तालाबों के रूप में इसके प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी पूरे भारत में मौजूद हैं। कभी देश में करोड़ों तालाब थे। इनमें से कई लाख आज भी जिन्दा हैं। एनीकट, तालाब, बावड़ी आदि जल संरक्षण के ढांचे राज्य ने भी बनाए और समाज ने भी। यूं देखें तो भारत का समाज व राज लुटेरा कभी नहीं रहा। यहां का राज-समाज तो प्याऊ लगाने... पानी दान करने वाला रहा है। जाने-माने पर्यावरण चिंतक श्री अनुपम मिश्र भारत में पानी-प्रबंधन की समृद्धि का बखान करते हुए बताते हैं कि हम तो आज पंचवर्षीय योजना भी ठीक से नहीं बना पाते, जबकि भारत का समाज 18वीं सदी में भी 15-20 साल की जल प्रबंधन योजना बनाकर काम करता था। दुर्योगवश पहले तो उपनिवेशवादियों ने और फिर आजादी के बाद इस देश की सरकारों ने लगातार इस पारम्परिक ज्ञान की उपेक्षा की। बड़े-बड़े बांध बनाकर आज पहले ही कुछ प्रदेशों की पीड़ा को बढ़ाया जा चुका है, अब सब्जबाग दिखाकर देश की सारी नदियों को जोड़ने की परियोजना के जरिए सरकार विनाश का अंतहीन रास्ता खोल रही है। सरकार के दावों से कुछ लोगों में भी भ्रम पैदा हो गया है, पर सरकार शायद यह भूल गई है कि समाज को ज्यादा दिन बहकाया नहीं जा सकता। जमीनी हकीकत से रू-ब-रू समाज को कुछ भी कहकर सन्तुष्ट करना आसान नहीं होता। इसी से इस परियोजना का विरोध होना शुरू हो गया है। दरअसल नदी जोड़ परियोजना न तो कोई आदर्श स्थापित कर सकेगी और न ही व्यवहार में खरी साबित होगी। इस तथ्य के पीछे तर्क क्या हैं? अतीत का अनुभव व वर्तमान का व्यवहार इस बारे में क्या कहता है? इन सवालों के जवाब तलाशने की ही कोशिश है यह पुस्तक। आंकड़े व अध्ययनों को एकबारगी भूल भी जाएं? पिछला अनुभव व व्यवहार ही इस परियोजना की पोल खोल देता है। जानना जरूरी है कि क्या हैं नदी जोड़ का सच?

बड़े-बड़े बांध बनाकर आज पहले ही कुछ प्रदेशों की पीड़ा को बढ़ाया जा चुका है, अब सब्जबाग दिखाकर देश की सारी नदियों को जोड़ने की योजना के जरिये सरकार विनाश का अंतहीन रास्ता खोल रही है।

परिचय

नदी जोड़ परियोजना भारत की नदियों को आपस में जोड़ने की परियोजना है। इसके अंतर्गत जहां बाढ़ आती हो, वहां का पानी... वहां की नदियों पर बांध बनाकर नहरों द्वारा सूखे क्षेत्रों की उन नदियों में ले जाया जायेगा, जिनमें पानी कम होगा। नदी स्त्रोत के आधार पर इस परियोजना को दो भागों में बांटा गया है-हिमालयी और प्रायद्वीपीय। कुल 44 नदियों पर 30 जोड़ों का निर्माण प्रस्तावित है:

प्रस्तावित नदी जोड़

(क) हिमालयी भाग

1. ब्रह्मपुत्र-गंगा (मानस-शंखोश-तीस्ता-गंगा)
2. कोशी-घाघरा
3. गंडक-गंगा
4. घाघरा-यमुना
5. शारदा-यमुना
6. यमुना-राजस्थान
7. राजस्थान-साबरमती
8. चुनार-सोन बैराज
9. सोन बाँध-गंगा की दक्षिणी सहायक नदियाँ
10. गंगा-दामोदर-सुबनरेखा
11. सुबनरेखा-महानदी
12. कोशी-मेची
13. फरक्का-सुन्दरबन
14. ब्रह्मपुत्र-गंगा (जोगीघोपा-तीस्ता-फरक्का)

(ख) प्रायद्वीपीय भाग

15. महानदी (मनिभद्र)-गोदावरी
16. गोदावरी (इचमपल्ली निचला बाँध)-कृष्णा (नागार्जुन सागर छोर तालाब)
17. गोदावरी (इचमपल्ली)-कृष्णा (विजयवाड़ा)
18. गोदावरी (पोलावरम)-कृष्णा (विजयवाड़ा)

19. कृष्णा (अलमाटी)-पेन्नार
20. कृष्णा (श्रीसीलम)-पेन्नार
21. कृष्णा (नागार्जुन सागर)-पेन्नार (सोमासिला)
22. पेन्नार (सोमासिला)-कावेरी (ग्रैंड एनीकट)
23. कावेरी (कट्टालाई)-वैगाई-गुण्डर
24. केन-बेतवा

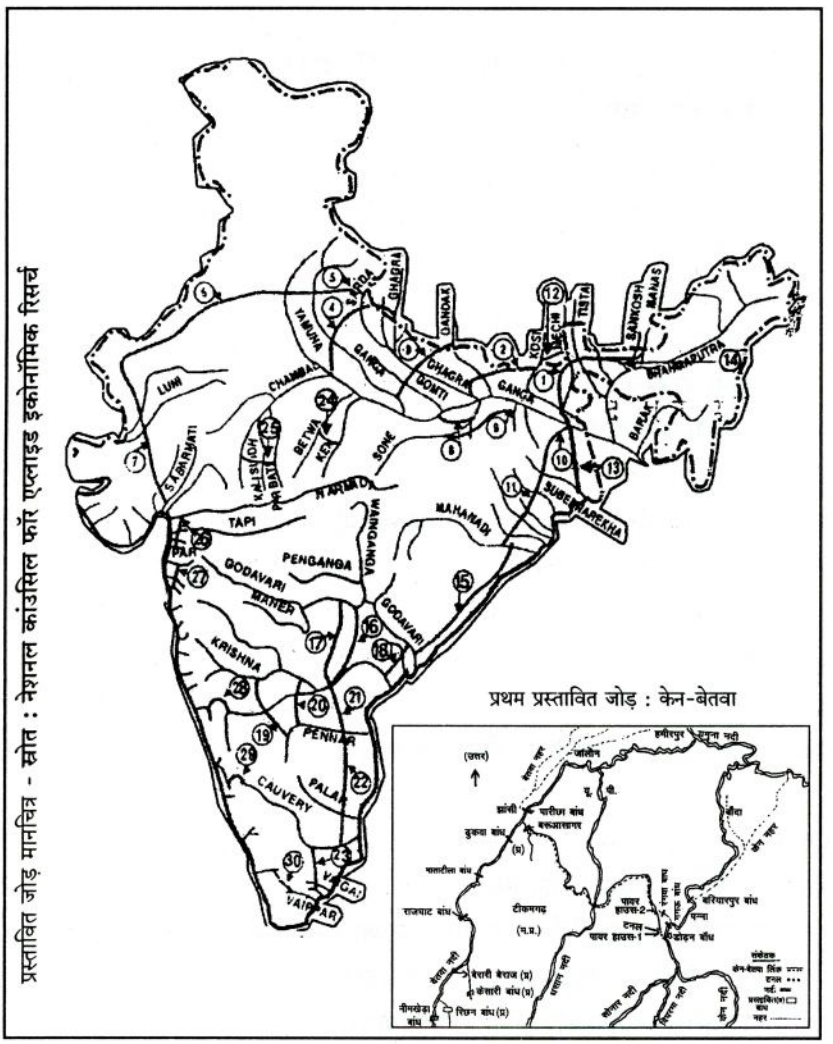

25. पार्वती-कालीसिंध-चम्बल
26. पार-ताप्ती-नर्मदा
27. दमनगंगा-पिंजाल
28. बेडती-वरदा
29. नेत्रवती-हेमवती
30. पम्बा-अचनकोविल-वैप्पार

यह पूरी परियोजना बांध, नहर व सुरंगों पर आधारित है। परियोजना के तहत् पूरे देश को 20 नदी घाटियों में बांटा गया है। इनमें से 12 प्रमुख नदी घाटियों का क्षेत्र 20,000 कि. मीटर से ज्यादा है। नियोजन एवं विकास के उद्देश्य से शेष मध्यम व छोटी नदी प्रणालियों को आठ नदी घाटियों में समेकित किया गया है। इसके तहत कम से कम 400 बांध बनाने होंगे। नदी जोड़ परियोजना का अनुमानित खर्च रुपये 56,000 करोड़ है। श्री सुरेश प्रभु की अध्यक्षता वाले कार्यदल ने अपने शुरुआती अध्ययन में ही इस आंकड़े के बढ़कर 100 हजार करोड़ होने की आशंका संभावना व्यक्त की थी।

सरकार ने इस परियोजना के ढेरों लाभ भी गिनाये है। उनकी चर्चा हम अगले पृष्ठों पर करेंगे। फिलहाल नदी जोड़ परियोजना को लागू करने से पहले सरकार को जनहित में जिन निर्देशों का पालन करना चाहिए, उनका उल्लेख जरूरी है।

संयुक्त राष्ट्र संघ दिशा-निर्देश और नदी जोड़ :

अक्टूबर, 2005 के प्रथम सप्ताह में केन्या (अफ्रीका) में संयुक्त राष्ट्र बांध एवं विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत बांध एवं विकास मंच का चतुर्थ सम्मेलन आयोजित किया गया था। इसमें किसी भी बांध एवं विकास परियोजना को शुरू करने से पहले कुछ निर्देशों पर ध्यान खींचा गया था। कहा गया है कि परियोजना शुरू होने से पहले इन तथ्यों के बारे में स्पष्टता होनी चाहिए। ऐसे कुछ महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश निम्न हैं :

1. परियोजना की क्या एवं क्यों आवश्यकता है?
2. ऐसी पूर्व परियोजनाओं के लाभदायक परिणामों की सूची का प्रकाशन।
3. नदियों की वर्तमान अवस्था एवं उन पर निर्भर आजीविका।

4. पर्यावरणीय, आर्थिक एवं सामाजिक पक्षों पर विस्तृत विचार।

5. प्रभावित आदिवासियों, स्थानीय निवासियों, महिलाओं एवं असुरक्षित समूहों की समस्याओं का निवारण।

6. विस्थापितों की समस्या का समुचित समाधान।

7. अन्तर्राष्ट्रीय/राष्ट्रीय/कानूनी/नियामक ढांचों से संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने की सन्तोषजनक प्रक्रिया व संभावनाएं।

8. बांध एवं विकास कार्यक्रमों के आयोजकों के अधिकार एवं कार्यक्रमों के खतरे।

9. सरकारी तन्त्र की भागीदारी व उत्तरदायित्व।

10. ग़ैर सरकारी संस्थाओं की पहरेदारी।

11. परियोजना संबंधी पूरी सूचना को लाभार्थियों, स्थानीय लोगों, जनप्रतिनिधियों तथा कार्यदल तक पहुंचाना, ताकि स्पष्ट व शीघ्र निर्णय की प्रक्रिया विकसित हो सके।

12. समस्त सूचना व जानकारी का संबद्ध प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद।

13. लाभार्थियों एवं कार्यदलों में परस्पर संवाद कायम रखना।

14. स्वीकृति व असहमति के क्षेत्रों को परिभाषित करना तथा उनका उल्लेख करना।

15. भ्रष्टाचार निरोधक कार्यप्रणाली विकसित करना।

16. नदी बेसिन में भागीदारी संबंधी राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय नीति का ध्यान रखना। बेसिन के संदर्भ में शान्तिपूर्ण समझौते सुनिश्चित करना व विवादों को सुलझाने के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करना।

17. स्वतन्त्र समीक्षा के लिए संस्था या ढांचा खड़ा करना।

18. परियोजना से संबंधित सूचना व संसाधनों का अन्तर्क्षेत्रीय व अन्तर्राज्यीय आदान-प्रदान। विशिष्ट उत्सवों या घटनाओं के समय भी ऐसी जानकारी को संबंधित जनों तक पहुंचाना।

19. परियोजना पर सामुदायिक व वैश्विक दृष्टिकोण को समझना।

दर्ज अतीत

26 जनवरी, 2002 महामहिम के.आर. नारायणन (तत्कालीन् भारतीय राष्ट्रपति)
अब भारत कोई बड़े बांध नहीं बनाएगा, क्योंकि हमारे पास इतना धन नहीं है।

●

मात्र साढ़े छः महीने बाद 15 अगस्त, 2002 महामहिम ए.पी.जे. अब्दुल कलाम
निवर्तमान भारतीय राष्ट्रपति ने राष्ट्र के नाम जारी सन्देश में नदी जोड़ परियोजना को लाभदायक बताते हुए इसे शीघ्र लागू करने पर जोर दिया।

●

अक्तूबर, 2002 के प्रारम्भ में श्री अटल बिहारी वाजपेयी
राजग सरकार के तत्कालीन् प्रधानमंत्री ने नदी जोड़ परियोजना लागू करने की घोषणा की।

●

21 अक्तूबर, 2002 को सर्वोच्च न्यायालय
नदी जोड़ परियोजना के कार्य में तेजी लाने का सुझाव दिया।

●

दिसम्बर 2002 में श्री सुरेश प्रभु की अध्यक्षता में नदी जोड़ सम्बन्धी कार्यदल का गठन।

●

27 जुलाई, 2003 को विस्थापन और पुनर्वास पर खर्च की बाबत टाइम्स ऑफ इण्डिया के द्वारा पूछे सवाल के जवाब में श्री सुरेश प्रभु का बयान
यह देख लिया जाएगा, लेकिन इस परियोजना का लाभ.. लागत से ज्यादा होगा।

●

23 दिसम्बर, 02, 140 नदियों की जलयात्रा के शुभारंभ मौके पर श्री राजेन्द्र सिंह
नदियों को जोड़ने की बजाय, समाज को नदियों से जोड़ें।

●

2 जनवरी, 03 को श्री अनुपम मिश्र का बयान
नदियों को जोड़ना प्रभु का काम है, इसमें सुरेश प्रभु न ही पड़ें तो बेहतर।

●

14 मार्च, 03 को हरिद्वार में श्री सुन्दर लाल बहुगुणा
नदियों को परस्पर जोड़ने की योजना विनाशकारी है। इसे किसी भी हालत में कामयाब नहीं होने दिया जाएगा।

14 मार्च, 03 को हरिद्वार में वन्दना शिवा

नदियों को जोड़ कर बहुराष्ट्रीय कम्पनियां वास्तव में नदियों पर कब्जा जमाना चाहती हैं। पहले विश्व बैंक से धन लेकर नदियों को जोड़ा जाएगा और बाद में नदियों का पानी कुछ कम्पनियों का पेटेंट हो जाएगा।

●

8 अगस्त,04, नई दिल्ली में श्री अटलबिहारी वाजपेयी

जल के मामले में हम सभी को दूरंदेशी का परिचय देते हुए ऐसा प्रयास करना चाहिए, जिससे देश को एक सूत्र में पिरोया जा सके।.... नदियों के बेसिन का उपयोग हो; यह देश का सपना रहा है। यह तभी संभव हो पाएगा जब ये सुनिश्चित हो जाये कि नदियों का जल समुद्र में बेकार नहीं जा रहा है..., किन्तु यू.पी.ए. सरकार ने ऐसे समय में टास्क फोर्स का बोरिया-बिस्तर समेटा है, जब मामले की संवेदनशीलता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

●

11 नवम्बर, 2005 को जल बिरादरी के पाँचवें राष्ट्रीय जल सम्मेलन में श्री एन.के. भण्डारी (मुख्य अभियन्ता, राष्ट्रीय जल विकास एजेन्सी भारत सरकार)

मैं देख रहा हूँ कि लोगों का नदी जोड़ परियोजना पर बिल्कुल यकीन नहीं है। मैं बताना चाहता हूँ कि अभी हमारी सरकार भी इस परियोजना के पहले चरण में है। अभी यह सोचना ठीक नहीं कि इस परियोजना को लागू कर दिया गया है। सरकार अभी इस पर अध्ययन कर रही है।

●

11 नवम्बर, 2005 को जल बिरादरी के पाँचवें राष्ट्रीय जल सम्मेलन में श्री जेड् हसन (पूर्व सचिव, जल संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार)

सरकार की नदी जोड़ परियोजना प्रकृति के खिलाफ होने के कारण नुकसानदायक है। ऐसी किसी भी परियोजना से देश का भला होने वाला नहीं है, जिसके मूल में भ्रष्टाचार व्याप्त हो।

●

24 अप्रैल, 06, श्रम शक्ति भवन, नई दिल्ली में राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण की बैठक के दौरान श्री सैफुद्दीन सोज़ (केन्द्रीय जल संसाधन मंत्री)

विभिन्न राज्यों के बीच सहमति हुए बग़ैर इस महत्वाकांक्षी परियोजना को पूरा नहीं किया जा सकता।

●

पूर्व में नदी जोड़ को अत्यन्त उपयोगी बताने वाले श्री सुरेश प्रभु (पूर्व अध्यक्ष, नदी जोड़ टास्क फोर्स) का 14 मई, 2006 को उदयपुर में बयान

नदियो को जोड़ देने मात्र से देश में व्याप्त जल संकट का समाधान नहीं हो सकता । जल संकट हल करने के लिए पानी की हर बूंद का प्रयोग करना होगा।

चूंकि नदी जोड़ परियोजना के मूल में बांध और नहरें ही हैं; अत: नदी जोड़ का इतिहास जानने के लिए भारत में बांधों की शुरुआत को जानना अच्छा होगा। अतीत में जाएं तो भारत की आज़ादी से दस साल पूर्व ही भारत में बड़े बांधों के निर्माण की चर्चा शुरू हो गई थी। सन् 1937 में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी ने एक सम्मेलन आयोजित किया था, जिसमें तत्कालीन गवर्नर हैलेट के साथ बांधों पर बहस हुई। इस बहस के बाद शामिल इंजीनियरों, ब्रितानी प्रशासकों और भारतीय नेताओं की आम राय बनी कि बाढ़ की विभीषिका पर नियन्त्रण नदियों को बांधने से नहीं, उनको मुक्त करने से ही संभव है। पिछले 78 वर्षों के तकनीकी रिकार्ड का उल्लेख करते हुए हैलेट ने कहा था बिहार में 50 वर्षों में एक बार खतरनाक बाढ़ आती है, इसके लिए नदियों पर तटबन्ध बनाना उचित नहीं है। सामान्य बाढ़ उपजाऊ मिट्टी लाती है; मछलियां लाती है और मलेरिया की आशंका दूर करती है। सामान्य बाढ़ से गंदगी धुल जाती है.... यानी ऐसी बाढ़ नुकसान कम करती थी, लाभ ज्यादा देती थी। उन्होंने तो यहां तक कहा कि अमेरिका जैसे श्रेष्ठतम तकनीकी जानकार देश भी नदियों पर काबू पाने में सफल नहीं हो पाए हैं।

आजादी के बाद सन् 1948 में दामोदर घाटी परियोजना शुरू की गई थी। उसी कदम को आगे बढ़ाते हुए 1956 में तत्कालीन् मुख्य अभियन्ता एन. के. राव ने गंगा और कावेरी के जोड़ की योजना का विचार सामने रखा था।

आजादी के बाद सन् 1948 में दामोदर घाटी परियोजना शुरू की गई थी। उसी कदम को आगे बढ़ाते हुए 1956 में तत्कालीन् मुख्य अभियन्ता एन. के. राव ने गंगा और कावेरी के जोड़ की योजना का विचार सामने रखा था। इसके तहत् तब पटना के निकट गंगा से 6000 क्यूसेक पानी लेकर दक्षिण में कावेरी पर पहुंचाए जाने का प्रस्ताव था। बांध और नहरों के जरिए यह पानी साल में केवल 150 दिन पहुँचाने का ही प्रस्ताव था। यह प्रस्ताव लगभग उसी दौर में आया, जब भाखड़ा नांगल बांध बना। तब ऐसे बांधों को 'आधुनिक भारत का मन्दिर' कहा गया। खेतों को पानी व उद्योगों को बिजली पहुंचाने को बड़ी जरूरत मानते हुए पं. जवाहर लाल नेहरू ने जिस आधुनिक भारत के स्वप्न को सच करने की कोशिश की थी, नदी जोड़ परियोजना भी उसी की एक कड़ी है। पं. नेहरू के

इस सपने को तो वर्तमान तंत्र ने याद रखा, लेकिन उनके 11 दिसम्बर, 1963 के एक भाषण को वह भूल गए।

पं. नेहरू के इस वाक्य को याद न रखना बड़ी भूल साबित हुई।

उन्होंने कहा था- ''आज मैं महात्मा गांधी के विचारों को बार-बार याद करता हूँ। यद्यपि मैं पूर्णरूप से आधुनिक यंत्रों का प्रशंसक हूँ और भारत की स्थिति को देखकर ऐसे सर्वोच्च यंत्र एवं तकनीक़ प्राप्त करना चाहता हूँ, जिनसे हम जल्दी आगे बढ़ जाएं, लेकिन यह सच है कि लम्बे समय तक देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा इस विकास से वंचित रहेगा। अत: कुछ ऐसे विकल्प विकसित करने होंगे, ताकि वे उत्पादन में सहयोगी हो सकें।' – पं. नेहरू के इस वाक्य को याद न रखना बड़ी भूल साबित हुई।

सन् 1971 के दौर में पायलट कैप्टन दस्तूर ने नहरों की माला बनाने की बात की। इसी के मद्देनजर तत्कालीन् सरकार ने जल संसाधन विकास हेतु राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की। आयोग की जिम्मेदारी थी कि वह इस योजना के सभी पक्षों का विस्तृत अध्ययन करके रिपोर्ट दे। आयोग की रिपोर्ट ने नदी जोड़ प्रस्ताव को एक सिरे से खारिज कर दिया। अगस्त, 1980 में इसे नजरअंदाज कर पुन: एक राष्ट्रीय जल विकास एजेंसी का गठन किया गया। तय हुआ कि एजेंसी जल विकास हेतु राष्ट्रीय परिदृश्य का अध्ययन करेगी । विभिन्न मंत्रालयों के अनेक मुख्य अभियन्ता इस भारी भरकम एजेंसी के सदस्य थे, लेकिन जनता का एक भी प्रतिनिधि इसका सदस्य नहीं बनाया गया था। यद्यपि यह एजेंसी अपनी बहुत सी उपलब्धियां गिनाती रही, लेकिन इसने एक भी तकनीकी रिपोर्ट नहीं पेश की। इसने किसी भी स्तर पर एक भी जनप्रतिनिधि से सलाह नहीं ली। अंतत: सितम्बर, 1990 में इसी एजेंसी ने नदी जोड़ परियोजना की रिपोर्ट प्रस्तुत की।

इस एजेंसी के गठन के लगभग दो दशक की चुप्पी के बाद एक बार फिर पानी पर राष्ट्र के नाम संदेश उद्घोषित हुआ। 26 जनवरी, 2002 को तत्कालीन् महामहिम राष्ट्रपति जी ने कहा-''अब भारत कोई बड़े बांध नहीं बनाएगा, क्योंकि हमारे पास इतना धन नहीं है। केवल पुराने बांधों को पूरा किया जाएगा और टूट-फूट ठीक की जाएगी।'' समय बदला-सत्ता बदली... मात्र साढ़े छह महीने बाद ही महामहिम भी

बदले। एक अति प्रतिष्ठित वैज्ञानिक व्यक्तित्व ने इस पद पर आसीन हो पद की गरिमा बढ़ाई। इसी बीच भारत सरकार ने नदी जोड़ परियोजना को अमल में लाने की चर्चा की और 15 अगस्त, 2002 को राष्ट्रपति जी ने राष्ट्र के नाम संदेश देते हुए नदी जोड़ को राष्ट्र की आवश्यकता बताया। 31 अक्टूबर, 2002 को सुप्रीम कोर्ट ने भी नदी जोड़ के संदर्भ में अपने सुझाव दिये। देश की सबसे बड़ी अदालत का तो सुझाव भी आदेश ही होता है न भाई! अत: सरकार ने तेजी दिखाई। इस तरह 'सड़क व नदी जोड़' तत्कालीन् सरकार की प्राथमिकता सूची में सबसे ऊपर आ गए।

इस ऐतिहासिक क्रम को देखकर ठीक से समझ आ जाता है कि आज राजभवन, संसद एवं न्यायपालिका तीनों ही इस परियोजना के लिए कटिबद्ध हैं। हमें समझ नहीं आता कि जिस परियोजना को एक आयोग... एक एजेंसी ने कभी नामंजूर कर दिया था, आखिर भारत सरकार की ऐसी क्या मजबूरी हो गई कि उसने तमाम नकारात्मक पहलुओं के बावजूद यह परियोजना शुरू करने की ठान ली ? दिसम्बर, 2002 में सुरेश प्रभु की अध्यक्षता में एक कार्यदल का गठन कर दिया गया। इसके उपाध्यक्ष श्री सी.सी. पटेल व सदस्य सचिव पूर्व जल संसाधन सचिव सी.डी. थत्ते थे। इसके अतिरिक्त एक अर्थशास्त्री, एक समाजशास्त्री, एक क़ानूनविद्, वन्यजीव विशेषज्ञ तथा जलाभाव वाले राज्यों से एक-एक अंशकालिक सदस्य भी शामिल किए गए।

हमें समझ नहीं आता कि जिस परियोजना को एक आयोग... एक एजेंसी ने कभी नामंजूर कर दिया था, आखिर भारत सरकार की ऐसी क्या मजबूरी हो गई कि उसने तमाम नकारात्मक पहलुओं के बावजूद यह परियोजना शुरू करने की ठान ली ?

व्यावहारिकता की दृष्टि से नदी जोड़ के आर्थिक-सामाजिक-पर्यावरणीय-पलायन व पुनर्वास आदि प्रभावों का नदीवार मूल्यांकन कैसे किया जाए... इसके दिशा-निर्देश तय करने का काम कार्यदल का था। चूंकि नदी जल को लेकर अंतर्राज्यीय विवाद पहले से ही चल रहे हैं तथा नदी जोड़ विवादों को और बढ़ायेगा... ऐसी आशंका बरकरार है; अत: ऐसे संभावित नदी विवादों के मद्देनजर राज्यों के मध्य अच्छा सामंजस्य कैसे स्थापित हो ?... यह सुझाने का काम भी कार्यदल को सौंपा गया। नदी जोड़ परियोजना के अमलीकरण के मामलों में अन्तर्राष्ट्रीय विस्तार का ऊंचा स्वप्न भी कार्यदल को ही देखना था। जुलाई, 2003

को इस कार्यदल की पहली बैठक बुलाई गई। इस बैठक को जागरूकता बैठक का नाम दिया गया। इसमें सुश्री सुनिता नारायण, राजेन्द्र सिंह, वंदना शिवा, नंदिता कृष्णा, प्रतिभा पांडे, सुन्दरलाल बहुगुणा, चंडीप्रसाद भट्ट, अशोक खोसला, आशीष कोठारी, बिट्टू सहगल, एम.ए. चिताले, असद रहमानी, प्रो. चन्द्रा, पूर्व वन महानिदेशक ए.के. मुखर्जी तथा सरकारी प्रतिनिधियों सहित कुल 57 सदस्यों ने भाग लिया। राष्ट्रीय जल विकास एजेंसी द्वारा तैयार एक फिल्म भी इस बैठक में दिखाई गई। दिसम्बर, 2003 को एक पत्र द्वारा सूचना दी गई कि नदी जोड़ के माध्यम से मस्तिष्क जोड़ के लिए एक समूह का गठन करने का निर्णय लिया गया है। यह समूह कार्यदल को विचार गोष्ठियाँ आयोजित करने, जनभागीदारी सुनिश्चित करने तथा लाभान्वितों से राय-मशविरा करने में मदद करेगा। शब्द यही थे, लेकिन सरकार की मंशा कुछ और ही थी। फिर कुछ दिन बाद सुरेश प्रभु जी ने भी एक पत्र में कहा कि कार्यदल से कोई भूल न हो जाए, इसलिए अपने विचार भेजें। इसी बीच मार्च, 2004 में चुनाव घोषित हो गए, तब तक सुरेश प्रभु जी नदी जोड़ परियोजना की हस्तरेखा देख चुके थे। उन्होंने कार्यदल से मुक्ति लेना ही श्रेयस्कर समझा।

...तब तक सुरेश प्रभु जी नदी जोड़ परियोजना की हस्तरेखा देख चुके थे। उन्होंने कार्यदल से मुक्ति लेना ही श्रेयस्कर समझा।

मई में चुनाव परिणाम घोषित हुए। नदी जोड़ को अपना चुनावी एजेण्डा बनाने वाले राजद गठबंधन को जनमत ने नकार दिया। सत्ता पलट दी गई। कुछ विस्तारित उद्देश्यों के तहत् संप्रग सरकार ने नदी जोड़ परियोजना का चेहरा बदलकर इसे जल परिवहन परियोजना के रूप में प्रचारित किया। ध्यान रहे कि यह उसी गठबंधन की सरकार है, जिसने पहले पिछली गठबंधन सरकार के रहते नदी जोड़ परियोजना का खुलकर विरोध किया था। संभवत: जल परिवहन का स्वप्न दिखाकर इस परियोजना के विरोध को नरम करने का प्रयास करना ही इसका उद्देश्य था। इसके साथ-साथ पूर्वगठित कार्यदल को भंग करके मंत्रालय ने इस कार्य पर विचार एवं क्रियान्वयन के लिए एक विशेष प्रकोष्ठ गठित कर दिया है। इस प्रकोष्ठ ने परियोजना के संदर्भ में राष्ट्रीय सम्मेलनों से अपनी शुरुआत की है। प्रस्तावित जोड़ों का व्यावहारिक आकलन भी जारी है।

नदी जोड़ परियोजना के संदर्भ में यह जरूरी निर्देश है कि इस प्रकार की पूर्व परियोजनाओं के लाभदायक परिणामों की सूची जनता के समक्ष उपस्थित की

जाए। ऐसे अनेक निर्देशों का पालन सरकार ने नहीं किया है। दिलचस्प बात यह है कि जुलाई, 2005 में प्रधानमंत्री ने इस परियोजना के पहले जोड़ (केन-बेतवा जोड़) का उद्घाटन भी कर दिया, जबकि नौ से बारह नवम्बर, 2005 को हुए जल बिरादरी के 5वें जल सम्मेलन में इस परियोजना पर हुई चर्चा में सरकारी प्रतिनिधियों का कहना था कि अभी दो साल तक तो इस पर अध्ययन ही करना है। यदि यह बात ठीक है, तो फिर उद्घाटन क्यों किया? अध्ययन पूरा नहीं हुआ, पर काम शुरू हो गया है। क्यों?

अब जरा मानसिकता के दूसरे पहलू को देखें।

अध्ययन पूरा नहीं हुआ, पर काम शुरू हो गया है। क्यों?

उल्लेखनीय है कि प्रस्तावित केन-बेतवा नदी जोड़ के संदर्भ में जितने दस्तावेज उपलब्ध हैं, उन्हें नगण्य ही कहा जाएगा। इस जोड़ में केन नदी का जल बेतवा में ले जाने की योजना है । केन-बेतवा जोड़ के अध्ययन में कई मूलभूत गलतियां हैं। इन दोनों नदी घाटियों में वर्षा जल एवं भूजल का इस्तेमाल बहुत ही कम किया जाता है । यदि इन्हें ठीक से उपयोग में लाया जाए, तो ही स्थानीय जल आवश्यकता पूरी हो जायेगी। हम दावा कर सकते हैं कि इस जोड़ के बेहतर विकल्प वहां मौजूद हैं।

सरकारी स्तर पर केन नदी घाटी में पानी की बहुलता का आकलन करते समय यह अनुमान किया गया कि यहां प्रति हेक्टेयर सिंचाई के लिए 5960 घन मीटर पानी की आवश्यकता होगी, जबकि बेतवा नदी घाटी में 10180 घन मीटर प्रति हेक्टेयर खपत का अनुमान है। यह इतना बड़ा अन्तर क्यों? इसका कारण नहीं बताया गया। इसी प्रकार केन नदी घाटी में 57.08 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र को ही कृषि योग्य दिखाया गया है, जबकि बेतवा में 67.88 प्रतिशत। यह स्पष्टत: दर्शाता है कि कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के लिए जानबूझकर बेतवा नदी घाटी में खेती अधिक व पानी कम दिखाया जा रहा है। जल बिरादरी के नवम्बर, 2005 में हुए राष्ट्रीय जल सम्मेलन में आए केन क्षेत्र के प्रतिनिधियों ने कहा-''वर्षा के तीन महीने बाद ही केन नदी में पानी नहीं है। पता नहीं सरकार कैसे बता रही है कि केन नदी में पानी की अधिकता है?'' इस परियोजना को लेकर तथाकथित लाभान्वितों को विश्वास में लेना तो दूर, उन्हे केन-बेतवा नदी जोड़ के बारे में

विस्तृत जानकारी तक नहीं दी गई। इस क्षेत्र के केवल आठ प्रतिशत लोग ही इस परियोजना के विषय में जानते हैं; बाकी 92 प्रतिशत आबादी जोड़ के विषय में बिल्कुल अनभिज्ञ हैं।

इस परियोजना के संदर्भ में सम्बन्धित राज्य सरकारों की टिप्पणियों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। उत्तर प्रदेश व मध्यप्रदेश दोनों ने ही पहले इस जोड़ के प्रति अपनी अनिच्छा प्रकट की थी। पहले दोनों को ही केन्द्र की इस परियोजना में अपने लाभ एवं पानी का न्यायपूर्ण बंटवारा नजर नहीं आ रहा था; लेकिन अब अचानक दोनों को परियोजना लाभदायक दिखने लगी है । दोनों में सहमति कैसे हुई? केंद्र, म.प्र. तथा उ.प्र. में शासन कर रही पार्टियां यूं तो एक-दूसरे का चेहरा तक पंसद नहीं करती। आखिर यह सहमति क्योंकर हो गई ? यह खतरनाक रजामन्दी है। इसके पीछे का एजेण्डा जनहित तो हो ही नही सकता।

केंद्र, म.प्र. तथा उ.प्र. में शासन कर रही पार्टियां यूं तो एक-दूसरे का चेहरा तक पंसद नहीं करती, आखिर यह सहमति क्योंकर हो गई ? यह खतरनाक रज़ामन्दी है।

इस पूरी परियोजना में अनेक ऐसे पक्ष हैं, जिनके बारे में सोचना, जानना व समझना जरूरी है; मसलन राष्ट्रीय जल विकास एजेंसी ने 20 साल बाद केन-बेतवा नदी जोड़ को व्यावहारिक कैसे बता दिया? पर्यावरण व विस्थापन आदि समस्याओं की दृष्टि से भी इसका अध्ययन अभी अधूरा है। इस एजेंसी ने जनसंख्या के बीस साल पुराने एवं कृषि के दस वर्ष पुराने आंकड़ों के आधार पर ही केन-बेतवा जोड़ की सिफारिश कर दी है। इस बात को भी पूरी तरह नजरअंदाज किया गया है कि इस देश की गरीब आबादी का एक बड़ा भाग पहले से ही विस्थापन की समस्याओं से जूझ रहा है। ऐसी परियोजनाओं से अब तक यदि कोई उद्देश्य सफल हुआ है तो यह कि नेताओं, सरकारी अधिकारियों, ठेकेदारों व अन्य संबंधित जनों के लिए बेहिसाब धन कमाना आसान हो गया है। नदी जोड़ एक ऐसी परियोजना है, यदि यह लागू होती है तो अब तक लागू किसी भी परियोजना की तुलना में इसके सबसे ज्यादा सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभाव होंगे। फिर भी सरकारें इसे बिना पूरी और पूर्व

तैयारी के शुरू कर रही है... क्यों? सरकारी स्तर पर कहा गया है कि यह परियोजना वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों के समूह द्वारा तैयार की गई है। इसे जल संसाधन मंत्रालय की तकनीकी सलाहकार समिति ने स्वीकृत किया है। इंजीनियरों, सामाजिक विशेषज्ञों व आर्थिक विशेषज्ञों ने भी इसे ठीक माना है। यदि ऐसा है तो फिर इसकी विस्तृत रिपोर्ट जनता के सामने लाने में क्या कठिनाई है?

पूर्व प्रधानमंत्री स्व. इंदिरा गांधी के समय इस परियोजना पर गम्भीरता से विचार किया गया था। नब्बे के दशक में डॉ. एम.एस. रेड्डी की सलाह व उच्चतम न्यायालय में डॉ. रामास्वामी अय्यर द्वारा इसे एक 'भयानक भूल' बताने के बाद तत्कालीन् सरकार ने इसे अस्वीकृत कर दिया था।

नेवेल्ली लिग्नाइट कॉर्पोरेशन से अवकाश प्राप्त इंजीनियर आर.के. मूर्ति के अनुसार- ''पूर्व प्रधानमंत्री स्व. इंदिरा गांधी के समय इस परियोजना पर गम्भीरता से विचार किया गया था। नब्बे के दशक में डॉ. एम.एस. रेड्डी की सलाह व उच्चतम न्यायालय में डॉ. रामास्वामी अय्यर द्वारा इसे एक 'भयानक भूल' बताने के बाद तत्कालीन् सरकार ने इसे अस्वीकृत कर दिया था।'' सवाल यह उठता है कि आज तक बनी सभी परियोजनाओं में यह सबसे महंगी परियोजना है। इसमें देश की जनता के जेब से अकूत पैसा निकल जाएगा। ऐसे में यदि कोई यह जवाब दे कि... ''यह अत्यन्त विकसित तकनीक़ है। समझ नहीं आएगी''... तो पैसा लगाने वालों के प्रति जवाबदेही कहां रही। अनेक गैरसरकारी-स्वयंसेवी संगठनों एवं विशेषज्ञों ने कार्यदल के अध्यक्ष श्री सुरेश प्रभु को इस बाबत् बहुत से पत्र लिखे, पर कोई जवाब नहीं मिला। यह सब गैर जिम्मेदाराना भाव है। अभी इस परियोजना की स्थिति यह है कि ज़मीनी संगठन इसे अव्यावहारिक बता रहे हैं। व्यापारी आंखें ललचाई गिद्ध निगाहों से पेंच टटोल रही हैं। कुछ सरकारी-गैर सरकारी लोगों से पक्ष में बयान दिलाने में जुटी हैं। हालांकि वर्तमान केंद्रीय जल संसाधन मंत्री जनाब सैफुद्दीन सोज़ साहब राज्यों के बीच सहमति को लेकर आशंकित हैं। कहते हैं इस असहमति के चलते परियोजना का परवान चढ़ना मुश्किल है।

किसी भी योजना-परियोजना का इतिहास उसके भविष्य की हस्तरेखा होता है। भारतीय जनमानस के लिए जानना जरूरी है कि नदी जोड़ परियोजना की अंतिम परिणति क्या होगी ? नदी जोड़ के भिन्न पहलू क्या हैं ? लागत एवं उसके स्रोत क्या हैं ? उनकी वास्तविकता क्या है? परियोजना से क्या लाभ... क्या हानि है? परियोजना जिन संकटों का समाधान बताती है, उनके मूल कारण क्या हैं ? क्या परियोजना उनका समाधान कर सकेगी? यदि नहीं, तो विकल्प क्या है ? अगले पृष्ठों में इसी दायित्व निर्वाह की कोशिश की गई है।

प्रस्तावित लाभ और उनका सच

नदी जोड़ परियोजना के प्रस्तावित लाभ ?

1. इससे 15,000 कि. मीटर लम्बा राष्ट्रीय जल यातायात मार्ग तैयार होगा, जिसमें मझोले जहाज व नावें आदि चल सकेंगे। परिवहन का यह सस्ता साधन होगा।
2. जल परिवहन से सड़क परिवहन में कमी आएगी। सड़कों पर दबाव कम होगा, तो प्रदूषण भी नियंत्रित हो जाएगा।
3. ऑटोमोबाइल के क्षेत्र में ईंधन खपत में कमी का एक बड़ा लाभ होगा। जाहिर है कि इससे तेल आयात में कमी आएगी। अनुमानत: इस तरह प्रति वर्ष करीब 65 हजार करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा बचेगी।
4. नदी परियोजना के तहत् बनने वाले बांधों से करीब 60 हजार मेगावाट की प्रदूषण मुक्त जल विद्युत का उत्पादन संभव हो सकेगा। यह एक बड़ी उपलब्धि होगी। पर्याप्त पानी-बिजली मिलने से औद्योगिक विकास की गति तेज होगी ।
5. इससे रोजगार का एक बड़ा क्षेत्र व अवसर मुहैया हो जाएगा।
6. देशभर की नदियों के आपस में जुड़ने से राष्ट्रीय एकता का संवर्द्धन होगा।
7. नदी जोड़ से पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम सीमाओं पर अतिरिक्त जल सुरक्षा सुनिश्चित होगी।
8. बेहतर पेयजल, कृषि उपज तथा बाढ़-सूखे से मुक्ति... स्वास्थ्य की बेहतरी में योगदान करेगी।

   कृषि के क्षेत्र में 1500 लाख एकड़ भूमि की अतिरिक्त सिंचाई हो सकेगी। इससे अगले पांच सालों में कृषि उपज शत-प्रतिशत बढ़ेगी। बाढ़ व सुखाड़ से नष्ट होने वाली करीब 2501 बिलियन रुपये की उपज भी नष्ट होने से बच जाएगी।
9. लगभग 60 हजार लाख लोगों को पीने का पानी बिना बाधा मिलेगा।
10. असम, बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश आदि क्षेत्रों में बाढ़ नियन्त्रित होगी तथा राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र आदि सूखे प्रदेशों को सिंचाई आदि के लिए पानी मिलेगा।

कितने व्यावहारिक : कितने अव्यावहारिक ?

जल परिवहन : नदी जोड़ परियोजना का नाम हमारी नई सरकार ने जल परिवहन परियोजना रख दिया है। यह सच है कि यदि जल परिवहन की संभावनाएं बन जाएं, तो लाभ होगा, पर पिछला इतिहास इस बारे में कुछ निराश ही करने वाला है। कई वर्ष पहले नौपरिवहन की खूब चर्चा हुई थी। गंगा नदी में बनारस से कोलकाता तक जल यातायात सुचारु करने की बात कही गई थी। भारतीय अन्तर्देशीय जलमार्ग प्राधिकरण इस दिशा में मशक्कत भी करता रहा है; लेकिन उसका आज तक कोई लाभ नहीं दिखा। जल परिवहन की संभावना कोरी ही साबित हुई। ...होगी ही, जब बड़े बांध रास्ते में हों, तो परिवहन बाधित ही होता है। अत: बांध आधारित कोई परियोजना जल परिवहन को बढ़ावा देगी; यह सोचना ही बेमानी है।

जल परिवहन की संभावना कोरी ही साबित हुई। ...होगी ही, जब बड़े बांध रास्ते में हों, तो परिवहन बाधित ही होता है।

आर्थिक लाभ : सरकारी बयान के अनुसार नदी जोड़ में आमतौर पर सरकार को धन नहीं लगाना पड़ेगा। दूसरी तरफ देखें तो विश्व बैंक आज विकासशील देशों की बड़े बांधों की परियोजनाओं से अपना हाथ खींच रहा है। ऐसे में यदि विश्व बैंक ही इस परियोजना की सिफारिश कर रहा हो, तो इसके पीछे छिपे उद्देश्यों को समझना मुश्किल नहीं है। अभी भी बड़े बांधों व बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के लिए हमें विदेशी पैसों पर निर्भर होना पड़ता है। विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष या अन्य जो भी संस्थाएं धन देती हैं, ये सभी अन्दरूनी तौर पर परस्पर जुड़ी हुई हैं। इनका एक संगठन है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष इन पर नज़र रखता है। ये सभी संस्थाएं तीसरी दुनिया के देशों के लिए अलग ढ़ंग की नीतियां बनाती हैं। इन नीतियों में इनका अपना आर्थिक लाभ ही अधिक प्राथमिकता पर रहता है। इनके लिए तीसरी दुनिया के देश पुरानी तकनीक एवं पुरानी मशीनों को फेंकने के मैदान हैं।

ये सभी संस्थाएं तीसरी दुनिया के देशों के लिए अलग ढंग की नीतियां बनाती हैं। ...इनके लिए तीसरी दुनिया के देश पुरानी तकनीक एवं पुरानी मशीनों को फेंकने के मैदान हैं।

किसी परियोजना के लिए जब विश्व बैंक किसी देश को ऋण देता है, तो इस राशि में दस प्रतिशत धन विश्व बैंक का होता है और बाकी पैसा किसी एक या ज्यादा देशों का। ऋण लेने वाले देश के साथ यह शर्त भी होती है कि वह अपना काम धन देने वाले देश से ही करायेगा। यह सब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की तकनीक व गुणवत्ता के नाम पर होता है। ऋणदाता का लाभ सुनिश्चित करने के लिए ही वैश्विक निविदा की शर्त रखी जाती है। इस तरह ऋण लेने वाला देश, धन देने वाले देश के नीचे दबा रहता है।

पानी को लेकर विश्व बैंक एवं एशियन विकास बैंक का नजरिया स्पष्ट है। वे ''पानी का अधिक उपयोग-अधिक मूल्य'' के सिद्धान्त पर यकीन रखते हैं। इनका मानना है कि बिना मूल्य या कम मूल्य में पानी देने से धन की हानि करना उचित नहीं है। ऐसी परियोजनाओं के विदेशी विशेषज्ञों को भी मेजबान देश द्वारा करोड़ों रुपये दिया जाता है। यदि किसी भी कारण से ठेका समाप्त हो जाए तो सारा पैसा मेजबान देश को भरना होता है। कितनी हास्यास्पद बात है !

ऐसी परियोजनाओं के विदेशी विशेषज्ञों को भी मेजबान देश द्वारा करोड़ों रुपये दिया जाता है। यदि किसी भी कारण से ठेका समाप्त हो जाए तो सारा पैसा मेजबान देश को भरना होता है। कितनी हास्यास्पद बात है !

प्रस्ताव के हिसाब से इस परियोजना में 56 हजार करोड़ रुपये खर्च होने थे। यह खर्च कोई अकेले नहीं कर सकता अर्थात देश को कुछ कम्पनियों के दबाव में रहना होगा। इन अनुमानित खर्च में जलाशयों के संरक्षण मूल्य, विस्थापन लागत तथा जंगलों से प्राप्त होने वाले ईंधन, चारकोल, बांस, गोंद, लीसा, रंग, तेल, सुगंधित पदार्थ, रोमिल (रोयें), पशुचर्म और सींग आदि की पर्यावरणीय हानियों को नहीं गिना गया। बीच में प्राकृतिक आपदाएं आ सकती हैं; अकाल पड़ सकते हैं; निर्माण में दुर्घटनाएं हो सकती हैं, इनका अनुमान भी नहीं लगाया गया। नदी जोड़ से डेल्टा व बन्दरगाहों का भी खात्मा होगा। इसका मूल्य भी नहीं जोड़ा गया। बाढ़ से बहुत लाभ भी होते हैं; जैसे भूजल का रिचार्ज, मछलियों का मुक्त स्थानान्तरण, विविधता का संरक्षण व उपज में वृद्धि आदि।

प्राकृतिक तौर पर बाढ़ को नियन्त्रित करने के लिए नदी तट के आसपास छोटे-छोटे बांध, पेड़, छोटी वनस्पति लगाना तथा भू-कचरों की रोकथाम आदि कारगर उपाय हैं। पहले यदि बाढ़ आती थी तो कुछ तबाही जरूर होती थी, लेकिन दुष्प्रभाव कम होते थे। योजनाकारों को इन सबका ध्यान क्यों नहीं आता ? बड़े आश्चर्य की बात है। यदि आर्थिक रूप से देखा जाए तो नदी जोड़ में हानि ज्यादा होगी, लाभ कम होंगे। इतनी भारी-भरकम और प्रकृति विरुद्ध इस परियोजना को किसी तरह यदि पूरा भी कर लिया गया, तो इसमें जितने बांध, नहरें व सुरंगें बनेंगी...; पानी ऊपर चढ़ाया जाएगा...; इन सब ढांचों की सुरक्षा कैसे होगी ? उसके लिए धन कहां से आएगा? जल परिवहन और ईंधन आयात से बचत का तर्क मेरी समझ में नहीं आता।

पेयजल : इस परियोजना में भारत के अपेक्षाकृत सूखे प्रदेशों को पीने का पानी मुहैया कराने की बात है। जो स्थान नदी के ऊपर के क्षेत्र में हैं, वहां पानी कैसे पहुंचेगा, यह साफ नहीं है। समुद्र के तटवर्ती प्रदेशों में पहुंचने वाले घरेलू पानी के खारेपन का क्या समाधान होगा; इसकी भी कोई चर्चा नहीं की गई है। बस ! इतना कहा गया है कि इस परियोजना से बहुत सारे लोगों को पीने का पानी मिल जाएगा। अधिकतर विशेषज्ञों का मानना है कि देश में पीने के पानी की कोई समस्या नहीं है; समस्या इसके कुप्रबन्धन की है। वैसे पीने के पानी की कमी तो श्रीनगर, सोलन, अल्मोड़ा, मसूरी, धामी जी (असम), अटगांव (महाराष्ट्र), रानौली और सबसे ज्यादा वर्षावाले क्षेत्र चेरापूंजी में भी है। इनमें से कई स्थानों के लिए कोई नदी जोड़ नहीं होगा। हां ! इन स्थानों पर बहने वाली नदियों पर विदेशी कम्पनियों का अधिकार हो जाने से यहां के लोगों को भी पानी खरीदकर ही पीना होगा, चाहे स्थानीय जनता में क्रय शक्ति हो या न हो। पानी पीने के लिए सभी को अतिरिक्त मूल्य चुकाना होगा। भारत के लोग अपने मूलभूत अधिकार को पाने के लिए भी पराश्रित हो जायेंगे। सरकारी अधिकारियों के निकम्मेपन के कारण महानगरों में तथा यात्रा के दौरान आज भी बहुत सा पानी दूध के मूल्य के बराबर पैसा देकर ही पीना पड़ रहा है। रेलवे स्टेशनों और बस अड्डों पर ठंडे पानी की बदइंतजामी जान-बूझकर की गई है, ताकि

जो स्थान नदी के ऊपर के क्षेत्र में हैं, वहां पानी कैसे पहुंचेगा, यह साफ नहीं है। समुद्र के तटवर्ती प्रदेशों में पहुंचने वाले घरेलू पानी के खारेपन का क्या समाधान होगा; इसकी भी कोई चर्चा नहीं की गई है।

लोग बोतलबंद पानी खरीदने को मजबूर हों। महेश्वर में पानी निकालने वाली कम्पनियों को तो सारी सुविधाएं दी गई हैं, लेकिन स्थानीय लोगों की आवाज दबा दी गई है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अभी भी हमारा ही पानी हमें ही बोतलबन्द व ठण्डे पेयों के रूप में दूध के भाव बेच ही रही हैं। जहां-जहां उनके संयंत्र लगे हैं, वहां-वहां भूजल स्तर कई सौ मीटर नीचे चला गया है। आसपास की ग्रामीण महिलाओं को कई-कई किलोमीटर दूर से पानी भरकर लाना पड़ रहा है।

प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक स्व: सिद्धराज ढड्ढा ने नदी जोड़ परियोजना को वैश्विक हमला बताते हुए कहा था– ''पानी का निजीकरण पूरी दुनिया को लूटने का धंधा है। इसका अंतिम समय तक विरोध होना चाहिए; लेकिन यह विरोध रचनात्मक होना चाहिए।'' चीन, स्पेन, अमेरिका समेत जहां कहीं भी नदी जोड़ संबंधी प्रस्तावों पर काम हुआ, आर्थिक व पर्यावरणीय दृष्टि से इसे अव्यावहारिक पाया गया। यह सब जानकर भी सरकार नदी जोड़ हेतु इतनी प्रतिबद्ध क्यों है?... पता नहीं?

स्वार्थपरक नीयत के कारण ही नेता, अफसर और ठेकेदारों के त्रिगुट को केवल पैसा और कुर्सी ही दिखाई देते हैं। ऐसी कुनीति व स्वार्थ का विरोध न हुआ, तो आगे गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को भी पानी खरीदकर ही पीना पड़ेगा। इससे विद्रोह की संभावना प्रबल होगी। जो पैसा नहीं दे सकेगा, उसका पानी कनेक्शन काट दिया जाएगा। पिछले दिनों शिवनाथ नदी के निजीकरण पर विरोध के आगे सरकार को झुकना पड़ा। लातिन अमेरिकी देश बोलीविया में 4 अप्रैल, 2002 को बहुराष्ट्रीय कम्पनी (वैक्टेल) द्वारा मनमानी कीमतें वसूलने के विरोध में हजारों लोग सड़कों पर उतर आए थे। (संदर्भ: दैनिक अमृत प्रभात, इलाहाबाद 19.5.2000) भारत में ऐसी पहल व व्यापक संगठन अभी दिखाई नहीं देता।

दरअसल पानी मात्र एक आवश्यकता नहीं, यह प्रकृति के प्रत्येक अंग का मूलभूत अधिकार है। इस देश की सरकार में बैठे लोग संभवत: यह भूल जाते हैं। प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक स्व: सिद्धराज ढड्ढा ने नदी जोड़ परियोजना को वैश्विक हमला बताते हुए कहा था– ''पानी का निजीकरण पूरी दुनिया को लूटने का धंधा है। इसका अंतिम समय तक विरोध होना चाहिए; लेकिन यह विरोध रचनात्मक होना चाहिए।''

चीन, स्पेन, अमेरिका समेत जहां कहीं भी नदी जोड़ संबंधी प्रस्तावों पर काम हुआ, आर्थिक व पर्यावरणीय दृष्टि से इसे अव्यावहारिक पाया गया। यह सब जानकर भी सरकार नदी जोड़ हेतु इतनी प्रतिबद्ध क्यों है ?... पता नहीं ?

सिंचाई : नदी जोड़ का अर्थ है-बड़े बांधों का व्यापक स्तर पर निर्माण । इसमें बड़े-बड़े जलाशय बनेंगे, बहुत सी नहरें खुदेंगी और बहुत सारी भूमि पर सिंचाई होगी। इस योजना में बांधों की भरमार होगी। अकेले केन-बेतवा जोड़ में ही छ: बांधों के बनने की बात है। हास्यास्पद है कि आज जब सारी दुनिया में बड़े बांधों को नकारा जा रहा है, भारत में इन्हें बहुतायत में बनाने की बात हो रही है! सरकार दुनिया के अनुभव से भी कुछ नहीं सीख रही।

दरअसल जल प्रबन्धन के लिए बनी समितियों में केवल सिविल इंजीनियरों को ही रखा जाता है, जिनके दिमाग में जल प्रबन्धन का एकमात्र उपाय बड़े-बड़े बांध और जल निकासी के यंत्र-संयंत्र ही होते हैं। जनसामान्य की मूलभूत आवश्यकताओं, स्थानीय सामाजिक व ज़मीनी स्थितियों तथा विस्थापितों की अन्तहीन पीड़ाओं से उनका कोई लेना-देना नहीं होता। जैसा कि नर्मदा प्रकरण में गुजरात के मुख्यमंत्री के राजनैतिक कदम से स्पष्ट है। इसके अलावा सरकारी पदों के अपने स्वार्थ होते हैं। नेताओं के लिए वोट की राजनीति होती है। अत: यह पूरा तन्त्र ही वास्तविकता से आंखें मूंदे रखना चाहता है। बड़े बांधों से सिंचाई और पेयजल के रिश्ते को समझने के लिए हमें उस आधार को समझना होगा, जिसकी नींव पर बांधों का इतिहास टिका है।

विश्व में बड़े बांधों का इतिहास अमेरिका में सबसे पहले 1932 में बनाए गए कोलरेडो नदी के हूवर बांध से आरम्भ होता है। बांध बनाने का विचार कैसे आया..., इसका अतीत अमेरिका के व्यापारिक मस्तिष्क से जुड़ा है। आप जानते हैं कि प्रथम विश्वयुद्ध में अमेरिका किसी भी पक्ष में शामिल नहीं था, किन्तु इस युद्ध के अन्तिम चरण में अमेरिका ने मित्र राष्ट्रों को कुछ विमान बेचे थे। तब किसी युद्ध में प्रथम बार विमानों का प्रयोग हुआ था। यह वह समय था, जब विश्व में द्वितीय विश्व युद्ध की संभावना बढ़ती ही जा रही थी। इस संभावना को ध्यान में रखते हुए अमेरिका ने पैसे कमाने के लिए और ज्यादा विमान बनाने की बात सोची। विमानों में एल्युमीनियम का प्रयोग होता है। विमान निर्माण हेतु बहुत ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अत: पानी से

बिजली पैदा करने की बात सोची गई और उसके लिए प्रथम बार बड़ा बांध बना। स्पष्ट है कि बड़े बांधों का आरम्भ युद्ध और युद्ध के व्यापार से हुआ। सिंचाई-बिजली आदि इसके अन्य उपयोग बाद में सोचे गए। दरअसल प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर विश्व बाजार में जबर्दस्त मन्दी का दौर था। ऐसे में विमान बनाना और विमान निर्माण के लिए पनबिजली और पनबिजली के लिए बांध बनाना... अच्छा धंधा साबित हुआ। अब समझ सकते हैं कि जब बांध का बीज ही व्यापार पर पड़ा, तो बांध सामाजिक पुण्य कैसे हो सकता है। आज पुन: इस तकनीक को साम्राज्यवादी हित का साधन बनाया जा रहा है। दुनिया इसमें महज पानी की लूट की सांख्यिकी देख रही है, जबकि बड़े बांधों के पिछले अनुभव खुद-ब-खुद सारी सच्चाई सामने रख देते हैं।

अब समझ सकते हैं कि जब बांध का बीज ही व्यापार पर पड़ा, तो बांध सामाजिक पुण्य कैसे हो सकता है। आज पुन: इस तकनीक को साम्राज्यवादी हित का साधन बनाया जा रहा है। दुनिया इसमें महज पानी की लूट की सांख्यिकी देख रही है, जबकि बड़े बांधों के पिछले अनुभव खुद-ब-खुद सारी सच्चाई सामने रख देते हैं।

बड़े बांधों के अनुभव

अनुभव बताते हैं कि बांधों के दुष्प्रभावों की सूची लंबी है: पारंपरिक क्षेत्रीय जल प्रबन्धन व जल संरक्षण के तरीकों की समाप्ति, ज़मीन में खारेपन की समस्या, बाढ़ की विभीषिका, जैविक असन्तुलन, बीमारियों का पैदा होना, जमीन का दलदलीकरण, ऋतुचक्र का बिगड़ जाना, भूक्षरण अर्थात् ज़मीन का कटाव, भूगर्भ जल में कमी से सूखे क्षेत्रों की बढ़ोतरी, व्यक्ति-गांव-राज्य व राष्ट्रों के मध्य विवाद, पलायन और पारिस्थितिकीय असन्तुलन आदि के साथ-साथ बड़े पैमाने पर आर्थिक हानि।

महत्वपूर्ण बात यह है कि बड़ी बांध परियोजनाओं को लेकर अभी तक जो लाभ गिनाए जाते रहे हैं; आज तक के इतिहास में एक भी परियोजना से आकलित स्तर तक लाभ नहीं मिले। विद्युत उत्पादकता भी आकलन की तुलना में औसतन 50 प्रतिशत से ज्यादा कहीं... किसी बांध में नहीं रही। जब फरक्का बैराज एवं दामोदर घाटी परियोजना बनाई गई थी, तो उस समय एक ईमानदार इंजीनियर ने सरकार को इससे होने वाली हानि को लेकर बार-बार चेताया था। अमेरिका की

टिनेसी नदी पर बनी असफल बहुउद्देशीय परियोजना के चेयरमैन ऑर्थर ई मॉर्गेन ने ही दामोदर नदी घाटी परियोजना की नींव डाली थी। इंजीनियर कपिल भट्टाचार्य ने तभी कह दिया था कि इससे न तो अनुमानित बिजली उत्पादन हो सकेगा और न ही सिंचाई की समस्या हल होगी। जितनी बाढ़ रुकेगी, उससे कई गुना क्षेत्र में बाढ़ एवं जल भराव की समस्या खड़ी हो जाएगी। उनकी बात पर तत्कालीन् सरकार ने ध्यान नहीं दिया। कालांतर में श्री भट्टाचार्य के सारे आकलन सही साबित हुए। फरक्का बैराज पर 100 करोड़ रुपये खर्च करने के बाद जब उसके दुष्परिणाम सामने आये तब कहीं अधिकारियों व अवकाश प्राप्त इंजीनियरों ने परियोजना को असफल माना। जहां पहले केवल 50 वर्ग. कि.मी. क्षेत्र में बाढ़ आती थी, वहां बांध बनने के बाद 10,390 वर्ग कि.मी. क्षेत्र बाढ़ से घिरने लगा। कोलकाता बन्दरगाह की गहराई भयंकर रूप से घटने से 60 कि.मी. दूर हल्दिया में एक नया बन्दरगाह बनाना पड़ा।

बड़े बांधों की तक़नीक अब विश्व स्तर पर असफल मानी जा रही है, पर भारत अभी उसी रास्ते पर चलने पर आमदा दिखता है। कहा जाता है कि बिना बांध सिंचाई कैसे होगी? सिंचाई की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता, किन्तु अधिक सिंचाई हमेशा हानिकारक ही होती है। जबकि बांध, नहरें व इनसे सिंचाई निर्धारण का तरीका हमें ज्यादा सिंचाई की आजादी देते हैं। ज्यादा सिंचाई से हानि के कई उदाहरण हमारे सामने हैं। मैसोपोटामिया में अधिक सिंचाई के कारण ही वहां की धरती सैकड़ों-हजारों वर्षों से बंजर पड़ी है। पाकिस्तान के लायलपुर, सरगोधा व मॉण्टगुमरी जिले किसी समय खेती से प्राप्त समृद्धि के उदाहरण थे, आज ये सभी धरती के खारेपन से जूझ रहे हैं। कुछ वर्ष पूर्व जारी विश्व संगठन की रिपोर्ट के अनुसार संसार की 50 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि अधिक सिंचाई से खारी हो गई है। प्रो. कोवदा मिट्टी के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक थे। उनके अनुसार खारेपन का यह आंकड़ा 80 प्रतिशत है। अब पानी के प्रति दृष्टि शीघ्रता से बदल रही है। भूतकाल की गलतियों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा रहा है। नई-नई सूचनाएं प्राप्त हो रही हैं। बड़े इंजीनियरिंग ढांचों में लगातार निवेश को चुनौती अब वे लोग दे रहे हैं, जो सोचते हैं कि जल की मूलभूत आवश्यकता को पूरा करने वाली छोटी

मैसोपोटामिया में अधिक सिंचाई के कारण ही वहां की धरती सैकड़ों-हजारों वर्षों से बंजर पड़ी है।

परियोजनाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अमेरिका में... जहां सबसे पहले बड़े बांधों की शुरुआत हुई थी, वहीं 1999 से 2002 के बीच लगभग 100 बांध हटाये गए । मिसीसिपी नदी पर करीब 200 बांध बनाये गए थे; अब इन्हें भी तोड़ने की बात हो रही है। वर्ष 2002 में विस्कोसिन में बाराबू नदी को 184 कि.मी. तक पुन: स्थापित किया गया है। दक्षिण-पश्चिमी अमेरिका में कॉलौरेडो नदी को भी पुनर्जीवित करने का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रकार अमेरिका तथा उसके आस-पास कुल मिलाकर लगभग 500 बांध हटाये जा चुके हैं। नदी को बहते रहने देने के लिए आंदोलन बढ़ रहे हैं। कैलिफोर्निया में भी नदियों को पुनर्जीवित करने के लिए आठ बिलियन डालर की योजना बनाई गई है। स्पेन की नई सरकार ने भी वहां पिछली सरकार की नदी जोड़ योजना को निरस्त कर दिया है। नदी जोड़ परियोजना से सहमत भारतीय इंजीनियरों को सोवियत संघ की उस परियोजना को ध्यान में रखना होगा, जिसके तहत् साइबेरिया में बर्फ के पिघलने से बनी नदियों के पानी को मध्य एशिया के रिपब्लिकों तक पहुंचाना था। इस काम के लिए जहां भी नहर गई... खारे पानी की समस्या हो गई। पारिस्थितिकी पर पड़े अन्य प्रभावों के कारण भी अंतत: इसे बन्द कर देना पड़ा।

अमेरिका में... जहां सबसे पहले बड़े बांधों की शुरुआत हुई थी, वहीं 1999 से 2002 के बीच लगभग 100 बांध हटाये गए ।

भारत में भाखड़ा-नांगल बांध आज तक के बने बांधों में सबसे सफल बांध माना जाता है। कहा जाता है कि इससे पंजाब, हरियाणा एवं राजस्थान को बहुत लाभ मिला है। लगभग 50 सालों के बाद आज जो अध्ययन व सर्वेक्षण सामने आ रहे हैं, उनसे पता चल रहा है कि असल में इन क्षेत्रों में समृद्धि अकेले खेती के कारण नहीं आई। पंजाब में विदेशी रोजगार का आकर्षण भी पैसा खींचने में मददगार रहा। समझने की बात है कि बांध ने पंजाब में सिर्फ 20 प्रतिशत समग्र कृषि भूमि की ही तो सिंचाई की । हरियाणा में यह आंकड़ा 31 प्रतिशत रहा। इससे दो पीढ़ियां तो खुशहाल रहीं; लेकिन अब क्या है?... अब वहां बहुत सी भूमि दलदली हो गई है। उस समय के विस्थापित लोग आज भी संघर्ष कर रहे हैं। राजस्थान के श्रीगंगानगर जिले व आसपास इंदिरा गांधी नहर पहुंची। इससे इस इलाके में समृद्धि आई जरूर, लेकिन आज यहां भी बहुत से किसान भूमि के खारेपन के कारण बहुत चिन्तित हैं। मध्यप्रदेश में तवा बांध के कारण भी खेती

का बड़ा क्षेत्रफल चपेट में आ गया है। इस तबाही के कारण भूमि विकास बैंक को पैसे वसूले बिना ही अपना खाता बन्द करना पड़ा।

गण्डक नदी के इलाक़े की जमीन प्राकृतिक रूप से बहुत उपजाऊ रही है। इसमें साल भर फसल होती थी। इसके ठीक बगल में कुछ छोटे-छोटे गांव हैं। गण्डक नदी पर तिरहुत नहर बनने से इन गांवों का पानी रुक गया; निकासी बन्द हो गई। अब वहां कुछ पैदा नहीं होता। गंडक नदी परियोजना में एक ओर कुछ क्षेत्र जल जमाव के कारण अभिशप्त है, तो दूसरी ओर कई इलाके ऐसे हैं, जहां पिछले 21 वर्षों से शायद ही कभी पानी पहुंचा हो। वास्तविकता यही है, जबकि प्रचार यह हो रहा है कि सिंचाई मिलने से इस क्षेत्र की कृषि में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। बड़े बांधों को लाभदायक बताने का प्रचार ज्यादा है... लाभ कम।

बड़े बांधों के सन्दर्भ में पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी का एक कथन उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। 1986 में सिंचाई मन्त्रियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था- "1970 के बाद से हमने जिन सिंचाई परियोजनाओं पर काम शुरू किया है, आज भी उनमें हम केवल धन ही डालते जा रहे हैं, लोगों को वापस कुछ नहीं मिला... न सिंचाई, न पानी, न उत्पादन में वृद्धि और न ही दैनिक जीवन की तकलीफों में कमी आई।" पर उनकी बात किसने सुनी। विरोधाभास यह है कि इन्हीं राजीव गांधी जी द्वारा कई सालों बाद टिहरी बांध के निर्माण को खोल दिया गया, जिसे कभी इंदिरा गांधी ने विशेषज्ञों के कहने पर बन्द कर दिया था।

अभी आप देखें तो देश में सबसे ज्यादा लगभग 40 प्रतिशत बांध महाराष्ट्र में हैं; फिर भी वहां पानी के लिए गांवों की टैकरों पर निर्भरता बढ़ी है। कृषि के संदर्भ में देखें, तो भारत सरकार का सबसे ज्यादा पैसा इसी प्रदेश में लगा है। पानी के लिए बने बांधों व नहरों ने क्या किया...? गन्ना, अंगूर, संतरे और नकदी फसलों के अंधाधुंध उत्पादन की यहां हवस ही बढ़ाई। अब अंगूर भी जा रहा है और संतरा भी। ऊर्जा सलाहकार बोर्ड के पूर्व अध्यक्ष बी.बी. वोहरा का कहना है कि 1951 से बड़ी सिंचाई परियोजनाओं पर 50 हजार करोड़ रुपये खर्च होने के बावजूद संभावित क्षमता का 50 फीसदी भी उपयोग नहीं हो पा रहा। इनसे ज़मीन दलदली होने की शिकायतें भी आम हैं। दरअसल ज्यादा से ज्यादा कृषि उपज लेने के चक्कर में नहरीकरण प्रणाली में संयम की कोई गुजाइश नहीं है; हाँ ! भ्रष्टाचार व गुणवत्ता में कमी का संकट अवश्य

पूरी तरह रचा-बसा है। इतने प्रमाण और कारणों के बावजूद बांधों को बढ़ावा देना कहां की समझदारी है।

बाढ़ एवं सुखाड़ : बड़े बांधों से एक खास लाभ बाढ़ और सुखाड़ को रोकना बताया गया है। इस पर चर्चा से पूर्व बाढ़ और सुखाड़ के विज्ञान को जान लेना जरूरी है। बाढ़ एक प्राकृतिक तथा वैज्ञानिक प्रक्रिया है, न कि विभीषिका; जैसा कि आज की सोच है। वार्षिक बाढ़ खेती की भूमि के विषों को दूर करती है; भूमि में खनिज आदि पोषक तत्व पहुंचाती है; भूगर्भ जल को रिचार्ज करती है और तटवर्ती जीवों तथा पेड़-पौधों को बनाए रखती है। बाढ़ नदी के गाद-जमाव को तो साफ करती ही है ; साथ ही नदी की जल बहाव क्षमता को भी पुनर्स्थापित करती है। कभी-कभी आने वाली बाढ़ बेकार भूमि को नई कृषि भूमि में बदल देती है। विशेष तौर पर नदी के निचले भागों में कृषि एवं पारिस्थितिकी के लिए नदी की बाढ़ बहुत उपयोगी होती है। यदि कृषि के कारण ही पृथ्वी पर मानव सभ्यता का विकास मानें तो कृषि के लिए प्राकृतिक बाढ़ से ज्यादा उपयोगी कोई और प्रक्रिया पृथ्वी पर नहीं है। यदि बाढ़ विभीषिका है, तो मात्र वहीं... जहां लोगों को बाढ़ क्षेत्र में बसा दिया गया है या नदी को हमने मार्ग बदलने को मजबूर किया है। नदी पर बने बांध भी इस विभीषिका को बढ़ाते हैं। वे निचले भागों को प्राकृतिक पोषक तत्वों से वंचित तो करते ही हैं, साथ ही नीचे के इलाक़ों में स्थाई बाढ़ व सूखे का कारण भी बनते हैं। यूं भी नीचे के मैदानों में बाढ़ को रोकना भूगर्भ जल के प्राकृतिक रिचार्ज को रोकना है। दक्षिण-पश्चिमी प्रायद्वीपीय भागों में बारिश के दिनों में बारिश कम ही होती है, जिससे भूजल का प्राकृतिक रिचार्ज भी कम ही होता है। इसी कारण मुहाने के क्षेत्र में कृषि उपज के लिए अतिरिक्त मात्रा में पानी निकाल लिया जाता है। इस तरह यदि ध्यान से देखा जाए तो बाढ़ से जितने लाभ होते हैं, उतनी हानियां नहीं होतीं। कटु सच कहें तो नदी को बांध देना... इसे मार देना है।

अब यदि सूखे का संदर्भ देखे तो 'बांध नदियों व जनसमूहों के दक्षिण एशियाई नेटवर्क' के समन्वयक श्री हिमांशु ठक्कर गुजरात के सूखे का मुख्य कारण सरदार सरोवर बांध को ही मानते हैं। उनका कहना है कि छोटे बांध व तालाबों के हिस्सों का पैसा विशाल बांधों में लग रहा है। सरकार राज्य के सिंचाई खर्च का 70 फीसदी धन सरदार सरोवर बांध पर खर्च कर रही है। राज्य के 550 छोटे बांध उचित संरक्षण के अभाव में बेकार पड़े हैं... सूख गए हैं। परिणामस्वरूप

जहां सत्तर के दशक में राज्य में सूखों से प्रभावित जिले 74 थे, आज बढ़कर उनकी संख्या 100 हो चुकी है। बाढ़ का क्षेत्र भी 64 लाख हेक्टेयर से बढ़कर 90 लाख हेक्टेयर हो गया है। अफसोस है! गुजरात के माननीय मुख्यमंत्री की आंख इसे देखने से इंकार करती है। इस मोर्चे पर असफलता को छिपाने के लिए वे बांध की ऊंचाई बढ़ाने में रुकावट पैदा होने पर अनशन करते हैं, पर सच से साक्षात्कार करना नहीं चाहते।

श्री ए. वैद्यनाथन के अनुसार किसी नदी घाटी में आने वाली सामान्य बाढ़ के कारण वहां पानी की अधिकता मान लेना ही गलत है। ज्यादातर नदियों में बरसात में बाढ़ आती है और सूखे के दिनों में पानी कम हो जाता है। यह गलत जल प्रबंधन का नतीजा है। इससे बाढ़ के बावजूद सिंचाई का लाभ नहीं मिलता।

डा. भरतसिंह (जल संसाधन मंत्रालय में नदी घाटियों में जल स्थानान्तरण संबंधी कार्यदल के पूर्व अध्यक्ष) का कहना है कि इन भारी-भरकम परियोजनाओं में जनता को आश्वस्त करने वाला कोई ऐसा तर्क या राष्ट्र के व्यापक हित दिखाई नहीं दे रहे हैं, जिनसे इस परियोजना का औचित्य समझा जा सके। हम कह सकते हैं कि कोई भी जल संसाधन इंजीनियर बाढ़-सुखाड़ की दृष्टि से इस परियोजना को नकार देगा।

जल बिरादरी के पांचवें राष्ट्रीय जल सम्मेलन में डॉ. हसन का भी कहना था कि यह परियोजना प्रकृति के विरुद्ध जाने वाली है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक फ्रेडरिक एंगेल्स ने कहा था-'मनुष्य कितना भी अभिमान कर ले कि उसने प्रकृति पर विजय पा ली है... इससे वह कितना भी खुश हो ले, किन्तु उसे यह याद रखना होगा कि प्रकृति अपने विरुद्ध जाने वाले से प्रतिशोध लेती है।' यह सच है। विशेषज्ञों का मानना है कि नदी जोड़ जैसी अप्राकृतिक नदी व्यवस्था जो परिवर्तन लाएगी, उनसे बाढ़ एवं सुखाड़ के नए क्षेत्र बनेंगे; अकाल भी पड़ सकते हैं। सन 1975 से पंजाब और सिंध क्षेत्र में काम कर रहे रॉबर्ट ग्रीन कैनेडी नामक इंजीनियर ने बताया था कि नहरों में जितना पानी छोड़ा जाता है, उसका केवल 18 प्रतिशत पानी ही लक्ष्य बिन्दु तक पहुंच पाता है; शेष 82 प्रतिशत पानी जल रिसाव तथा अन्य कारणों से बीच में ही रह जाता है। इतना ही नहीं... नहरों के आसपास के बहुत से खेत इसी रिसाव के कारण बर्बाद हुए हैं। अब देखो ! हीराकुड बांध

निर्माण से बाढ़ क्षेत्र के कम होने की बात कही गई थी; परन्तु अब वहां भी बाढ़ क्षेत्र बढ़ता ही जा रहा है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के पूर्व निदेशक एस.के. सिन्हा बताते हैं कि नागार्जुन सागर बांध 1967 में बन गया था, पर इसकी नहरों का काम आज तक पूरा नहीं हुआ। बांध निर्माण सचमुच दीर्घकालीन परियोजनाएं साबित हो रही हैं। टिहरी इसका दूसरा उदाहरण है।

बांध तो बन रहे हैं, लेकिन नदी जल में कमी की चिंता सरकार को नहीं है। सर्वेक्षण की मानें तो आज गंगा में उसके एक शतक पहले उपलब्ध जल का मात्र सातवां हिस्सा रह गया है। शायद इस लगातार घटते नदी जल का आंकड़ा ही है कि आज कोई भी राज्य यह मानने को तैयार नहीं है कि उसके पास उसकी जरूरत से ज्यादा पानी है; फिर नदियों के जुड़ने से यह समस्या कैसे हल होगी? नदी जोड़ने से तो बाढ़ के दुष्प्रभाव बढ़ेंगे ही। हम जानते हैं कि भारत की नदियों में वर्षा के मौसम में ही बाढ़ आती है। वर्षा के मौसम में बांधों में अधिक पानी आ जाने से उसे जबरन निकालना पड़ता है। इससे जान-माल की क्षति होती है।

पिछले दिनों नर्मदा के तवा बांध में से बिना किसी सूचना के पानी छोड़ दिया गया, जिससे जान-माल की बड़ी क्षति हुई। जीवन देने के लिए बनाई गई परियोजना एक झटके में हत्यारी बन गई। सरकारी स्तर पर यह संख्या बहुत कम बताई गई थी, जबकि प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार 1000 से ऊपर लोग बहकर मरे थे। अभी 20 सितम्बर, 2005 को पश्चिमी बंगाल में मात्र चार-पांच दिन की बारिश से सारी नदियों के छोटे बांध टूट गए। नदियां अपने तटबन्धों को तोड़कर मैदानों में बह निकलीं। क्यों? ...क्योंकि बहने के लिए पानी का रास्ता बन्द मिला। 200 से ज्यादा स्थानों की रेलवे लाइनें बह गईं। नीचे चौबीस परगना में जहां कोई नदी नहीं है, वहां भी पानी लगभग एक महीने तक रुका रहा। ऊपर के खेतों पर... जहां से नदी बहकर आई थी, बालू की 10 से 12 इंच मोटी परत जम गई। उसे हटाना दुष्कर हो गया। कितने लोग, कितने मवेशी मरे... कोई हिसाब नहीं। जो बच गए, उन्हें नर्क झेलना पड़ा।

दरअसल गर्मी में सभी नदियों में पानी कम हो जाता है; उन नदियों में भी जिनमें वर्षा के मौसम में बाढ़ आती है। ऐसे में सिर्फ बाढ़ की वजह से जल अधिकता वाली मान ली गई नदियों से पानी लेकर गर्मी में सूख जाने वाली नदियों को पानी

देना किसी तरह व्यावहारिक नहीं है। बारिश के दिनों में नीचे की नदियों में भी पर्याप्त पानी होता है। इसी मौके पर ऊपर की नदियां पानी छोड़ेंगी तो ऊपर की बाढ़ नीचे भी बाढ़ लाएगी। यह कई तरह के संकट खड़ा करेगी। इससे विवाद व बाढ़-सुखाड़ और बढ़ेंगे। देखें तो नदी जोड़ में सभी राज्यों का पानी में हिस्सा तो तय हो जाएगा, पर उन्हें जरूरत के मुताबिक नहीं, बल्कि सरकारी सहमति के हिसाब से पानी मिलेगा। पानी का व्यापार करने वाली कम्पनियां पैसों के लालच में पानी का दोहन ज्यादा करेंगी ही। उन पर कोई लगाम नहीं है। ऐसे में भूगर्भ जल में आई कमी से सूखे के क्षेत्र ही ज्यादा बनेंगे। जो जितना पैसा दे सकेगा, वह उतना पानी प्राप्त कर सकेगा। अत: एक ओर कुछ क्षेत्रों में पानी की मांग और ज्यादा बढ़ जाएगी और दूसरी ओर कुछ लोग बेपानी मरेंगे। यूं भी देखें तो नहरों की उम्र ज्यादा नहीं है। नहरें तीन पीढ़ी तो मालामाल कर सकती हैं, चौथी पीढ़ी का हाल-बेहाल हो जाता है। कुछ सालों के ऐसे सुख से क्या लाभ; जिससे हम खुद अगली पीढ़ियों की मुसीबत का कारण बन जाएं! यह हमारी परम्परा नहीं रही। हमारे यहां अगली पीढ़ियों के लिए कुछ अच्छा... कल्याणकारी छोड़कर जाने की परम्परा रही है। इस देश में राजा ययाति को कभी अच्छा नहीं माना गया, क्योंकि बुढ़ापे में जवान रहने की इच्छा से उसने अपने पुत्र से जवानी मांगने से भी परहेज नहीं किया था। सरकार भी तो देश की माई-बाप ही होती है... पर वह तो अपनी संतानों की जवानी मांगकर उन्हें वृद्ध बना रही है। हमें सोचना होगा।

बिजली : प्राय: बड़े बांध सिंचाई एवं विद्युत उत्पादन के लिए बनाये जाते रहे हैं। यह और बात है कि लाभ को लेकर जितने ऊंचे ख्वाब दिखाए गए, वे कभी पूरे नहीं हुए। दामोदर घाटी परियोजना में जितना बिजली उत्पादन कहा गया था, उसकी तुलना में जो कुल बिजली इससे पैदा हो सकी; वह बहुत ही कम थी। जो बिजली मिली भी... वह उसके हाइड्रो-पावर प्रोजेक्ट से नहीं, बल्कि उस प्रोजेक्ट के फेल हो जाने के बाद बनाये गए थर्मल पावर स्टेशनों से प्राप्त होती है। रामास्वामी वी. अय्यर (जल संसाधन मंत्रालय में पूर्व सचिव) का कहना है कि आज तक यह स्पष्ट नहीं हो सका है कि ऐसी एक परियोजना में 30,000 मेगावाट की लिफ्टिंग क्षमता विद्युत कैसे उत्पादित की जाएगी? पटना में गंगा नदी समुद्र की औसत सतह से 200 फुट ऊपर बहती है। अब यदि गंगा को किसी प्रायद्वीपीय नदी तक पहुंचाना हो तो विन्ध्य शृंखला की 2860 फीट की ऊंचाई तक पानी उठाना होगा। इसके लिए इतनी ऊर्जा चाहिए

होगी, जितनी भारत के सभी विद्युत उत्पादक संयंत्र मिलकर एक दिन में उत्पादित करते हैं। यह लगभग 90,000 मेगावाट विद्युत शक्ति होगी। अध्ययन बताता है कि पिछले 25 सालों में हमारी ज्यादातर नदियों में पानी लगभग आधा रह गया है। यदि नदियों में पानी ही पूरा नहीं होगा, तो पानी से बिजली उत्पादन का तय लक्ष्य वैसे ही हासिल न हो सकेगा। अब जिस तरह गंगा का ग्लेशियर हर साल पीछे खिसकता जा रहा है.... जहां पहले गंगा स्रोत तक जाने के लिए 11 कि.मी. चलना पड़ता था, अब 18 कि.मी. चलना पड़ता है। इसे देखें तो लक्ष्य पूर्ति की प्राप्ति संदिग्ध लगती है।

स्वास्थ्य : बड़े बांधों के जलाशयों में बहुत दिनों तक जल जमा रहने से आस-पास में रह रहे लोग बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं। मिस्र और इराक़ में काम कर चुके सिंचाई विशेषज्ञ सर विलियम विककॉक्स ने अपनी रिपोर्ट में 1920 के दशक मे फैले मलेरिया के संदर्भ में अखबारों में छपे कुछ उदाहरण दिए थे। उन्होंने लिखा था-''एक मेडिकल कॉलेज का छात्र होने के नाते लेखक यह दावे से कह सकता है कि कोलकाता से नागदा तक के गांवों में पहले मलेरिया नहीं होता था। दामोदर नदी की बाढ़ में आने वाली मछलियां मच्छरों के अण्डे खा जाती थीं। जब से ईस्ट इंडिया कम्पनी ने रेल लाइन को बाढ़ से बचाने के लिए एक ऊंचा तटबन्ध बनाया, तब से ही इस क्षेत्र में जल भराव होने लगा। परिणामस्वरूप मलेरिया होना शुरू हुआ।'' उड़ीसा में मलेरिया एवं गरीबी के संदर्भ में 1928 में सरकार ने एक विशेषज्ञ समिति बनाई थी। उसकी रिपोर्ट थी कि तटबन्ध वाली प्रणाली ही सारी समस्याओं की जड़ है। 1992 में नागार्जुन सागर क्षेत्र में हड्डी की बीमारी (Knock knee) फैली। 1999 में हीराकुड बांध के पास के लोगों को पेचिश, दस्त व मलेरिया हुआ। सरदार सरोवर बांध प्रभाव क्षेत्र में परवेटा के पास अचानक बच्चों की मृत्यु दर बढ़ गई। इधर गुजरात में रामेश्वरपुरा की तरफ भी कुछ बच्चे व वृद्ध अचानक मर गये, जिसका कारण जल भराव व विस्थापितों में पौष्टिकता का अभाव था।

मानसिक स्वास्थ्य संबंधी 1995 की विश्व रिपोर्ट में कहा गया कि मानसिक बीमारियों का एक बड़ा कारण विस्थापन है। आंकड़े बताते हैं कि विस्थापन मानसिक ही नहीं, शारीरिक रोगों का भी कारण बनता है। विस्थापन से खाने की आदतों में बदलाव आता है। जैसा... जब उपलब्ध हो, भोजन करना पड़ता है। इससे पौष्टिकता में बहुत कमी आ जाती है। मां बच्चे को दूध नहीं पिला सकती, क्योंकि विस्थापन के कारण आमदनी कम होने से उसे भी काम पर जाना पड़ता

है। मां को खुद भी पौष्टिक खुराक नहीं मिल पाती। ऐसी स्थिति में पुरुषों में भी भिन्न कारणों से कुण्ठा जन्म ले लेती है। वे नशे आदि की लतों में फंस जाते हैं। हताशा व परेशानी से पनपी खीझ से पत्नी व बच्चों को मारना शुरू कर देते हैं। अपराधों में भी लिप्त होने की संभावना बनी रहती है। गफलत और भ्रष्टाचार के कारण उनमें पहले ही अनेक हिंसक गतिविधियां जन्म ले चुकी होती हैं। देश में बांध परियोजनाओं से स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव का यह सूक्ष्म चित्र है।

रोज़गार : 50 वर्षों का इतिहास साक्षी है कि बड़े बांधों की वजह से विस्थापित चार करोड़ लोग आज तक रोजगार नहीं पा सके। नदी जोड़ परियोजना के तहत् प्रस्तावित बांधों एवं नहरों से भी बहुत से गांव, उपजाऊ कृषि भूमि एवं वन क्षेत्र डूबेंगे। इस परियोजना में बहुत से लोगों को रोज़गार देने का दावा तो हम कर रहे हैं, लेकिन इससे जो करोड़ों लोग विस्थापित होंगे; उनके हिस्से तो बेरोजगारी ही आएगी। इसका क्या इंतजाम है? अकेले केन-बेतवा जोड़ से ही 50 हजार की आबादी सीधे-सीधे विस्थापित होगी। अभी ही बिहार में मछुआरों की मुसीबत आई हुई है। एक फरक्का बांध से ही बिहार में हजारों मछुआरों की आजीविका समाप्त हो गई। ये मछुआरे बड़ी भीषण दुर्दशा झेल रहे हैं। सारी कीमती मछलियों का उत्पादन गिर गया है। महासिर मछली तो बिल्कुल ही खत्म हो गई।

स्पष्ट है कि प्रदूषित पानी से जलचर जीवों के जीवन को खतरा पैदा होगा, तो मत्स्य पालकों की आजीविका समाप्त हो ही जाएगी। जो वन क्षेत्र और कृषि भूमि आदि डूब में आएंगे, उन पर आश्रित लोगों के रोजगार भी खत्म होंगे। जिन लोगों को इस परियोजना में काम मिलेगा, वे भी परियोजना पूरी होने के बाद बेकार हो जाएंगे। कारण कि उनके स्थाई रोजगार का आधार तो पहले ही डूब गया होगा। हां ! जिन बड़ी देसी-विदेशी कंपनियों को ठेके मिलेंगे, वे अवश्य अपनी मशीनों का प्रयोग निरंतर करती रहेंगी। इससे रोज़गार के अवसर कम होंगे। अंतत: यह परियोजना बेरोजगारों की एक लंबी फौज ही तैयार करेगी।

औद्योगिक विकास : इस परियोजना में उद्योगों को बिजली व पानी की उपलब्धि की बात भी कही गई है। इसे बड़े उद्योगों के लिए ही बनाया गया है, जबकि सच यह है कि बड़े उद्योगों व सम्पन्न शहरियों के द्वारा ही पानी का सबसे अधिक दुरुपयोग किया गया है। इसी से पानी के प्रदूषण की भयंकर

समस्या खड़ी हो गई है। उद्योगों द्वारा असंशोधित कचरा बहाने से देश की ज्यादातर नदियाँ गन्दे नालों में परिवर्तित हो गई हैं। इस मूल्य पर इन्हें पानी दिया ही क्यों जाना चाहिए? पानी चाहे किसी का भी हो, उसे प्रदूषित करके छोड़ना मानवता व प्रकृति के प्रति भी अक्षम्य अपराध है। उद्योगों को पानी मिले जरूर पर वे जितना पानी लें, उतना जल पुनर्भरण भी करें। वे उपयोग पश्चात् जल को साफ-स्वच्छ कर अन्य उपयोग हेतु प्रवाहित करें। जहां तक बिजली का सवाल है...पहली बात तो यह है कि आज तक जितनी भी परियोजनाओं में बिजली उत्पादन क्षमता के जो भी आकलन दिए गए थे, उनसे आधी क्षमता का भी उत्पादन नहीं हो पाया। बिजली चोरी रोकने का विकल्प अधिक उत्पादन नहीं हो सकता। बिजली चोरी रोकनी ही होगी। अधिक पानी पीने वाली चाहे फसल हो या फैक्टरी, लगाम तो कसनी ही होगी। बिजली के अनुशासित उपयोग का पाठ पढ़ाए बग़ैर औद्योगिक क्षेत्र में बिजली संकट से नहीं उबरा जा सकता।

राष्ट्रीय एकता : दिलचस्प रूप से इस परियोजना का एक लाभ राष्ट्रीय एकता बताया गया है। वे भूलते हैं कि देश में राज्यवार ऊपर-नीचे नदियों के जल का बंटवारा एकता नहीं, विवाद का कारण बना है। अभी चारों दिशाओं के लोग एक-दूसरे के तीर्थों पर जाते हैं। इससे एक आवागमन कायम है। एक-दूसरे को जानने की ललक भी कायम है। उ.प्र. के लोग गंगासागर, गया और पुरी जाते हैं तो दक्षिण के बद्रीनाथ। एकता व सद्भाव कायम करने का इससे बेहतर साधन और नहीं दिखाई देता। नदी जोड़ तो तोड़क साबित होगा। यह तो तोड़-मोड़ का जोड़ है। इससे विवाद बढ़ेंगे। नदी जुड़ने से गंगा सरीखी श्रद्धेय नदियों का जल दूसरी नदियों में मिलकर कितना पावन, पवित्र और निर्मल बचेगा... आप समझ सकते हैं । तब लोग वहां पहुंचे पानी से ही गंगा को आंकेंगे। इससे श्रद्धा कम ही होगी, गंगा मूल में जाने का आकर्षण कम ही होगा। इसकी विस्तृत चर्चा हम अगले पन्नों में नदी जोड़ के खतरों से संबंधित अध्याय में करेंगे। यूँ हमारी सरकार ने जितनी ज्यादा बार राष्ट्रीय एकता के कार्यक्रम चलाए हैं; मतभेद उतने ज्यादा प्रबल हुए हैं। कृपा कर सरकार भारत की संस्कृति और एकता के मामले में लोगों को उनके निर्णय पर छोड़ दें। पार्टियां जाति-धर्म-समुदाय की राजनीति करना बन्द कर मुंह सी लें, यही बहुत है।

...तो ये थे अतीत के आइने में नदी जोड़ सरीखी गतिविधियों के अनुभव, जिनसे नदी जोड़ के प्रस्तावित लाभों की परिणति को समझा सकता है।

खतरे

नदी जोड़ का प्रस्तावित कार्य लाभ की दृष्टि से बेकार सिद्ध होगा, सिर्फ इतना नहीं .... नदी जोड़ की यह परियोजना कई तरह के भयानक खतरों को भी जन्म देगी। विस्थापन, सामाजिक-राजकीय-अन्तर्राज्यीय-अन्तर्राष्ट्रीय विवाद, भूगोल व पर्यावरण के खतरे तथा आर्थिक-सांस्कृतिक दुष्प्रभाव इस दृष्टि से महत्वपूर्ण विषय हैं। इन सभी विषयों पर विस्तार से जानना जरूरी है। कारण कि ये सभी कहीं न कहीं आमजन की जिंदगी को सीधे-सीधे प्रभावित करने वाले हैं। नदी जोड़ के संभावित दुष्प्रभाव कुछ ऐसे हैं कि यदि एक बार देश इनके चंगुल में फंस गया तो निकलना मुश्किल होगा। जानना जरूरी है कि इस बारे में आमजन क्या सोचता है ? श्री राजेंद्र सिंह (अध्यक्ष, जल बिरादरी) की पहल पर व्यापक स्तर पर शुरू राष्ट्रीय जलयात्रा और नदी जोड़ बैठकों में इसका जमीनी आभास मिला। दुष्प्रभावों/ख़तरों पर आम राय निम्नवत् है:

1. विस्थापन : अभी बिहार में जिन 14 पनबिजली बांधों का प्रस्ताव आया है उन्हें छोड़ दें तो भारत में 4291 बांध हैं, इनमें से 3596 तो बन चुके हैं, 695 बन रहे हैं। इनसे विस्थापित लगभग चार करोड़ में से सिर्फ 25 प्रतिशत लोगों का पुनर्वास हुआ है। इन चार करोड़ में से 40 प्रतिशत लोग सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक रूप से सबसे निचले पायदान के हैं। भारत में ही नहीं, संसार में जहां भी बांध बनाये गए हैं.... कहीं भी पुनर्वास ठीक से नहीं हुआ है। पुनर्वास की बात तो एक बार छोड़ ही दें, विस्थापितों का अपनी जगह से हटाना ही बड़ा मुश्किल होता है। जोर-जबरदस्ती से ही उन्हें हटाया जाता है। लोग अपनी जन्मभूमि नहीं छोड़ना चाहते। महाराष्ट्र में 1993 तक सरदार सरोवर बांध हेतु आबादी को हटाते हुए रिश्वत दी गई, मारा गया, जेल में ठूंसा गया... पर लोग नहीं माने। मनीबेली गांव में पहली बार सड़क बनाकर लालच भी दिखाया गया, पर लोग फिर भी तैयार नहीं हुए। जेल जाते रहे। अन्त्रास गांव की एक आदिवासी महिला बुधिबेन ने अपना गांव छोड़ने से मना किया तो पुलिस ने न केवल धमकाया, बल्कि उससे बलात्कार भी किया।

विस्थापन एक बड़ा सवाल है। सरकार भूल जाती है कि भारत के लोगों के मन में अपनी संस्कृति और धरती का सम्मान और मोह अभी बरकरार है। यहां नदी-जमीन कोई वस्तु नहीं, देवता व मां सरीखे हैं। संस्कृति पर आघात मारक होता

है। इससे टूटन होती है। सरकार के प्रति आस्था घटती है। हम देखते हैं कि अक्सर विस्थापितों को उनकी ज़मीन से बिल्कुल भिन्न जगहों पर बसा दिया जाता है। हिमाचल के पोंग बांध के विस्थापितों को पहाड़ी भूमि के स्थान पर राजस्थान में पाकिस्तान की सीमा पर ऐसी जगह बसाया गया, जहां ज़मीन पथरीली थी; और पानी का कोई साधन भी नहीं था। विस्थापितों को प्राय: जानवरों की तरह छोटी-छोटी बैरकें ही निवास के लिए मिलती हैं। इन्हें खेती की ज़मीन नहीं दी जाती; यदि कहीं दी भी जाती है तो वह भ्रष्टाचार की फाइलों में फंस जाती है। टिहरी की स्थिति तो और भी खराब है। न तो उत्तरांचल सरकार और न ही केन्द्र की उनके प्रति सहानुभूति दिखाई दे रही है। भाखड़ा के समय तो इन बातों का अनुभव ही नहीं था, परन्तु नर्मदा और टिहरी के समय तो विस्थापन के दुष्परिणामों को सोचना चाहिए था। सरकार की नदी जोड़ परियोजना की योजना में इसकी चिंता कहीं नहीं है। विस्थापन से कुछ ऐसी समस्याएं सामने आती हैं, जिनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। पहाड़ी परिवेश से उजड़ कर जो महिलाएं मैदान में रह रही हैं, उससे उनकी दिनचर्या के संकट कैसे बढ़े हैं? अनेक बार बहुत से लोग झुग्गी, झोपड़ियों में भेज दिए जाते हैं। जिन्हें जब चाहा, तब वहां से भगा दिया जाता है।

मनीबेली की महिलाएं नए स्थान में शौच-स्नान के नित्यकर्म को तरस गईं। यह लज्जाजनक है। प्रस्तावित नदी जोड़ परियोजना से 270 मिलियन पशुओं के विस्थापन का अनुमान है। पशुधन कृषि व्यवस्था की जान है। पशुओं को अपने स्थान पर चारा मिलता रहता है, तभी इनका अस्तित्व होता है। इसके लिए क्या व्यवस्था होगी? इसका कोई विवरण नहीं है।

इस परियोजना से जो विस्थापन होगा, वह भारत-पाकिस्तान बनने के समय हुए विस्थापन से भी बड़ा होगा। जाने क्या होगा?

नदियों के जोड़ से धारा बदलेगी। इससे डेल्टा के क्षेत्र में मिट्टी कम आएगी, तो बंगाल की खाड़ी की समुद्री सतह बढ़ने से डेल्टा की वृद्धि रुकेगी। इससे बांग्लादेश व पश्चिमी बंगाल के लगभग 130 लाख लोग विस्थापित होंगे। डेल्टा क्षेत्र के नीचे के हिस्से में 100 मिलियन लोग रहते हैं। अभी ही यहां मिट्टी का आना कम हो गया है। 1970 में यह आंकड़ा 2.4 बिलियन टन था, जो 1991 में 1.2 बिलियन टन रह गया है।

कुछ लोगों का कहना है कि सरकार पुनर्वास तो कर ही देती है, लेकिन विस्थापित लोग एकमुश्त पैसे के लालच में अपनी जमीन बेच देते हैं। यह बात सही नहीं है। पहली बात तो यह कि ऐसे मामले बहुत कम होते हैं; दूसरा सरकारी तंत्र इतना भ्रष्ट हो गया है कि प्रभावित लोगों को पूरा मुआवजा ही नहीं मिल पाता। प्राय: सरकारी अधिकारी पैसा आदि देते समय अपना कमीशन जरूर काट लेते हैं। विस्थापितों को जो जमीनें दी जाती हैं, वे निचले स्तर की होती हैं। उपजाऊ भूमि को तो लोग छोड़ते ही कहां हैं? इन्हें बसाने के लिये अनेक प्रबन्ध करने पड़ते हैं : बिजली, पीने का पानी, घर के लिए जमीन, स्कूल, खाना, चिकित्सा, यातायात के साधन एवं संचार सुविधाएं। इस पक्ष पर सरकार ने अपनी विश्वसनीयता नहीं बनाई है।

विस्थापन का एक बुरा पक्ष यह है कि इससे अंतत: शहरों पर दबाव बढ़ता है। शहरों की ओर पलायन सुनिश्चित होता है। यह पलायन अधिकतर महानगरों की ओर ही होता है। जितना साधनहीन समुदाय शहरों की ओर दौड़ेगा, वहां अपराध और अव्यवस्था में उतनी ही बढ़ोतरी होगी। ये ऐसे पहलू हैं, जो विस्थापन की दारुण कथा कहते हैं, पर विस्थापितों की फिक्र किसे है ?

लंबे अरसे के बाद बांध की ऊंचाई बढ़ाने के खिलाफ सुश्री मेधा पाटकर के लंबी भूख हड़ताल और बांध की ऊंचाई के पक्ष में गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के अनशन ने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। बड़े बांध का मुद्दा एक बार फिर उबाल पर है। केंद्रीय जल संसाधन मंत्री श्री सैफुद्दीन सोज़ बांध की ऊंचाई बढ़ाने के पक्ष में नहीं दिखे, लेकिन उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती ही साबित हुई। संभवत: प्रधानमंत्री जी को ऊंचे बांध का ऊंचा सपना ही पसंद है। राज करने की नीति पर चलने वाले लोक नीतियों को भूल गए हैं।

2. विवाद : परियोजना का एक लाभ राष्ट्रीय एकता बढ़ना भी बताया गया है। राष्ट्रपति जी ने अपने भाषण में इसकी चर्चा की थी। यदि गहराई से सोचा जाय तो यह सरकार का दिवास्वप्न है। जिस ढंग व ढांचे से इस परियोजना को क्रियान्वित किया जायेगा... उससे व्यक्ति, समूह, केन्द्र, राज्य तथा राष्ट्रों के मध्य विवाद खड़े हो जायेंगे। यह मानने के ठोस कारण है। देश में एक लम्बे समय से पानी के पीछे राज्यों में विवाद चल रहे हैं, जो आज तक नहीं सुलझे। इसका मुख्य कारण है कि पानी पर 'अधिकार' के मामले में कोई स्पष्ट क़ानूनी व्याख्या नहीं है; न तो जमीनी स्तर पर और न ही

कानूनी किताबों के स्तर पर। राज्य-केन्द्र तथा राज्य-राज्य के मध्य भी कानून साफ नहीं है। इनसे उपजी कुछ मुख्य समस्याएं निम्न हैं :

1. नदी घाटियों के स्थानान्तरण के मामलों को निबटाने के लिए कोई कानूनी व्यवस्था नहीं है। एक ओर केन्द्र सरकार को इसके विषय में कानूनी अधिकार नहीं हैं और दूसरी ओर राज्य सरकारें केन्द्र को यह अधिकार देने को सहमत नहीं हैं।

2. अभी तक प्रायद्वीपीय नदी घाटियों या केवल एक नदी घाटी के पानी के वितरण की समस्या की स्थिति में राज्यों की सहमति से सरकार द्वारा गठित ट्रिब्यूनल के द्वारा ही समाधान सुनिश्चित किया जाता रहा है। आज ट्रिब्यूनल का फैसला अन्तिम माना जाता है। अभी तक देश में 14 ट्रिब्यूनल हैं। समस्या यह है कि ट्रिब्यूनल समय बहुत लगा देते हैं। कई बार तो परिस्थिति ही बिल्कुल बदल जाती है ।

3. सरकार ने राज्यों के मध्य विवाद सुलझाने के लिए सरकारिया आयोग बनाया था। उसकी कुछ सिफारिशें मानी जरूर गईं ; लेकिन वे भी संतुष्ट नहीं करतीं।

4. राज्य के भीतर के विवाद सिविल न्यायालय निपटाते हैं और हमारे सिविल कानूनों में पानी के प्रबंधन व उपयोग संबंधी मालिकाना हक़ को लेकर कोई स्पष्ट क़ानून नहीं है।

5. जल के अधिकार तथा उसके प्रयोग के सन्दर्भ में जो नियम सरकारी तौर पर बनाए गए हैं, उनका पालन खुद सरकार ही नहीं कर पा रही, तो भला लोगों से कैसे उम्मीद करें ? कारण, जल कानूनों का अव्यावहारिक होना है।

1987 की जलनीति पानी को एक मुख्य प्राकृतिक संसाधन, एक मुख्य आवश्यकता और राष्ट्र की बहुमूल्य संपदा घोषित करती है। इस नीति ने पानी को लेकर नए तरह के संकट की शुरुआत की है। इसमें पानी की व्याख्या ही गलत की गई है। पानी मनुष्य या सजीवों की आवश्यकता नहीं, उनका जीवन है। अत: यह मौलिक अधिकार होना चाहिए। दरअसल 'आवश्यकता' शब्द ही पानी पर

विवाद खड़े करने को काफी है, क्योंकि तब मांग-आपूर्ति का सिद्धान्त सामने आ जाता है। यह सिद्धान्त पानी को बाज़ार की वस्तु बना देने के लिए काफी है। आज देश में पानी के निजीकरण को लेकर जो तेजी दिख रही है, यह पानी की इसी व्याख्या के कारण है। जरा सोचिए, जब नदियों पर कम्पनियों को अधिकार दे दिए जाएंगे, तब पीने के पानी के लिए भी गांवों को पैसे देने पड़ेंगे। अतिशयोक्ति नहीं कि लोग बिना टैक्स अपने घर के कुओं, हैण्डपम्पों आदि से पानी शायद ही ले सकें। हालांकि उच्चतम न्यायालय ने एक जनहित याचिका के तहत् सरकार से कहा है कि नदी जोड़ योजना को 2015 तक क्रियान्वित किया जाए, ताकि जनता को पीने के साफ पानी के रूप में उसका अधिकार मिल सके। उल्लेखनीय है कि पीने के पानी के अधिकार को संविधान की धारा-21 में 'जीवन का अधिकार' माना गया है। न्यायालय ने नदी जोड़ का पक्ष लेते वक्त संभवत: इस पक्ष पर ध्यान नहीं दिया कि नदी जोड़ से इस उल्लिखित अधिकार पर बाजार की छाया पड़ेगी। 'जीवन के अधिकार' में पीने का पानी एक पक्ष है। लगभग 80 फीसदी पानी तो सिंचाई के लिए प्रयुक्त होता है। देश की एक बड़ी आबादी की आजीविका खेती से ही चलती है। खेती से ही देश को खाद्यान्न मिलता है। इस योजना को समर्थन यह सोचकर मिल रहा है कि प्रतिवर्ष सूखे वाले क्षेत्रों को बाढ़ वाले क्षेत्रों की ओर से खूब पानी मिल जाएगा, परन्तु ऐसा होगा नहीं। जब गर्मियों में पानी कम होगा, तो सबसे पहले नदी मूल से सम्बद्ध राज्य ही उसका उपयोग करना चाहेगा। इससे राज्यों में विवाद चालू हो जायेंगे। संविधान में ऐसा कोई कानून नहीं है, जो इस पर कारगर भूमिका निभा सके।

...अदालत के फैसले को पंजाब विधान सभा ने झुठला दिया। यह विवाद रहेंगे ही। बांध और नहरें विवाद की ही जड़ हैं।

नहरी जल के बंटवारे को लेकर भी गांवों में विवाद होते ही हैं। सरकार कहां-कहां विवाद निपटायेगी। अभी अक्तूबर, 05 में श्रीगंगानगर जिले में रावला व घड़साना मण्डी में पानी के बंटवारे को लेकर दो समुदायों में झगड़ा हो गया। बाद में यह लड़ाई पुलिस व समुदाय के बीच टकराव में तब्दील हो गई। पुलिस ने एक समुदाय का गलत पक्ष लिया था। इस झगड़े में चार लोग मारे गए और तीस घायल हुए। ऐसा ही एक उदाहरण टोंक जिले के सोएला गांव का भी है। वहां की जनता बीसलपुर बांध के पानी

को जयपुर व अजमेर को देने का विरोध कर रही थी। पुलिस ने उन पर गोली चला दी। कई लोगों की जान गई और बड़ी संख्या में लोग घायल भी हुए। इस कांड के विरोध में राजस्थान की मुख्यमंत्री से इस्तीफा मांगा गया। मुख्यमंत्री अभी भी जिद्द पर अड़ी हैं। वह अक्सर ठेकेदारों को फटकार लगा रही हैं, पर जन विरोध के कारण काम शुरू नहीं हो पा रहा है।

उत्तरांचल के टिहरी क्षेत्र में भिलंगना नदी पर बांध को लेकर फिलण्डा में उग्र आंदोलन चला। यहां अभी मात्र 10 प्रतिशत भूमि में ही सिंचाई हो पाती है। इस बांध से तो टिहरी का एक बड़ा भाग डूब जाएगा। सिंचाई का आंकड़ा भी इसी के साथ डूबेगा। उत्तरांचल में जहां पहले ही भूकम्प और भूक्षरण का खतरा बहुत है; टिहरी बनने से ये खतरे और बढ़े हैं। उत्तरांचल ठीक ही कहता है कि इतना खतरा झेलकर कुछ बड़े उद्योगों और दिल्ली को पानी क्यों दिया जाए? आखिर इस गंगाजल को भी दिल्ली के लोग शौचालयों के फ्लश में बहा देंगे। टिहरी कुछ वर्ष पूर्व भी एक जल प्रलय झेल चुका है। टिहरी भी एक दिन विवाद का कारण बनेगा।

अन्तर्राज्यीय विवाद : समझौते के बावजूद जल विवाद का कारण यह है कि अभी सभवत: ऐसी कोई सुविधा नहीं है, जिससे ऐसे सटीक आंकड़े प्रस्तुत किए जा सकें कि साल भर में नदी का कितना पानी बह जाता है ? कितना रिचार्ज होता है ? नदी का कैचमेंट क्षेत्र कितना है और उस क्षेत्र में नदी के पूरे रास्ते में कितनी वर्षा होती है ? इसी से विवाद है।

तमिलनाडु सरकार नदी जोड़ परियोजना को स्वीकार कर रही है, जबकि आन्ध्र प्रभावित जोड़ से संशंकित और असहमत है। तमिलनाडु में मकारा बांध पूरा हो गया है, जो इस योजना में काम आएगा। केरल सरकार ने 6 अगस्त, 2003 को विधानसभा में एकमत से इस जोड़ के विरुद्ध प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। गुजरात सरकार भी दमन गंगा-पिंजल जोड़ का विरोध कर रही है। उसका मानना है कि यह जोड़ गुजरात के लिये हानिकारक सिद्ध होगा। सतलुज-यमुना लिंक पर हरियाणा व पंजाब अरसे से लड़ ही रहे हैं। वर्ष-2005 में 9 से 12 नवम्बर तक जल बिरादरी के राष्ट्रीय जल सम्मेलन में पंजाब से आए प्रतिनिधियों ने बताया था कि वहां यह आन्दोलन उग्र रूप धारण कर रहा है। ये विवाद सभी जगह हैं। बंगाल सरकार चिन्तित है। फरक्का बांध से उत्पन्न बाढ़ व भूक्षरण की समस्याओं से निबटने के लिए वह कब

से केंद्र सरकार से पर्याप्त धन की मांग कर रही है। नदी जोड़ को लेकर असम सरकार का भी मानना है कि पहले सरकार राज्यों से इसकी सहमति ले। यूं उत्तर-पूर्व में अभी से ''बह्मपुत्र बचाओ आंदोलन'' की आवाज सुनाई देने लगी है। तरुण भारत संघ की जलयात्रा के दौरान कई राज्यों का मानना था कि सरकार उल्टी गंगा बहा रही है। इससे भारत का सर्वनाश शुरू हो जाएगा। केन-बेतवा का पहला जोड़ बुंदेलखण्ड को सीधे-सीधे प्रभावित करेगा। तरुण भारत संघ द्वारा प्रो. जी.डी. अग्रवाल के नेतृत्व में कराए गए वैज्ञानिक-सामाजिक अध्ययन का संकेत भी अच्छा नहीं है। बांदा में नदी जोड़ के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू हो चुका है। इस जोड़ के विरोध की धमकी दिल्ली तक सुनाई देने लगी है। गुजरात के लोग भी नर्मदा-साबरमती जोड़ के भ्रम को समझ रहे हैं। कई वर्ष पूर्व सतलुज-यमुना, कावेरी-गोदावरी और गोदावरी-महानदी को जोड़ने वाली नहरों का निर्माण शुरू हुआ था। इसमें बहुत सारा धन खर्च हुआ, समय व श्रम भी लगा, किन्तु ये जोड़ सफल नहीं हुए।

दरअसल कोई राज्य यह नहीं मानता कि उसके पास अतिरिक्त पानी है। दिल्ली में सोनिया विहार में पानी पहुंचाने के लिए फ्रांस की कम्पनी स्वेज को अनुबंधित किया गया। पानी उत्तर प्रदेश से आना था। उत्तर प्रदेश सरकार ने कह दिया कि अभी पानी नहीं है; जब होगा, तब दे दिया जाएगा। इससे दिल्ली सरकार तो कंपनी को प्रतिदिन हजारों रुपया अदा करती ही रही, बेशक सोनिया विहार संयत्र को पानी मिले या नहीं। समय पर पानी नहीं मिला तो क्या लाभ?... का बरखा जब कृषि सुखाने। ध्यान देने की बात है कि इसी स्वेज कम्पनी को द. अमेरिका के कई देशों ने अपने यहां से धक्के देकर निकाल दिया है। यह कम्पनी अब अपना नाम बदलकर ओडियन के नाम से पश्चिमी बंगाल में भी जल प्रबन्धन करने की बात चला रही है।

देश में पानी के कई अन्य विवाद भी उठ सकते हैं। वन कानून 1980, राष्ट्रीय वन नीति 1988, वन्य जीव संरक्षण कानून एवं पर्यावरण सुरक्षा कानून और पर्यावरण नीति 2005 आदि का नदी जोड़ परियोजना से टकराव हो सकता है। प्रस्तावित नदी जोड़ परियोजना प्रदूषण नियन्त्रण एक्ट एवं 73 और 74वें संवैधानिक संशोधनों के विपरीत है; जिनके अनुसार नदी के पानी का स्वामित्व ग्राम पंचायत, ग्राम सभा और राज्य सरकारों का है। इस प्रकार यह परियोजना ही संविधान के विपरीत मालूम होती है। पानी के अनेक पहलुओं के संदर्भ में

कोई समुचित कानून ही नहीं है। उन पर उठे विवादों का क्या होगा? परियोजना में कहा गया है कि इससे पश्चिम व उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर अतिरिक्त जल सुरक्षा रेखा मुहैया होगी। सवाल यह है कि इस पर अधिकार किसका होगा?.... निश्चय ही किसी बहुराष्ट्रीय कम्पनी का। पाकिस्तान से कभी कोई विवाद उठ खड़ा होगा तो सम्बन्धित कंपनी किसके बारे में सोचेगी – भारत या पाकिस्तान? यह कौन सुनिश्चित करेगा?

अन्तर्राष्ट्रीय विवाद : प्रस्तावित नदी जोड़ों से कुछ अन्य राष्ट्र भी प्रभावित होंगे। हिमालयी भाग की नदियों के 14 जोड़ों में से 5 जोड़ नेपाल से बहने वाली नदियों से सम्बद्ध हैं - कांशी-मेची, कोशी-घाघरा, गण्डक-गंगा, घाघरा-यमुना और शारदा-यमुना। भारत-नेपाल के बीच पहले भी 1920, 1954, 1959, 1968 और 1969 में जल संधि हो चुकी हैं। नेपाल के विशेषज्ञ यह कह रहे हैं कि भारत सरकार को इस परियोजना के संदर्भ में नेपाल से बात करनी चाहिए थी। परियोजना के तहत् नेपाल से आने वाली कई प्रमुख नदियों का पानी भारत के दक्षिणी राज्यों को जाना है। नदी जोड़ के प्रस्तावित बड़े जलाशयों का नेपाल पर सामाजिक एवं पर्यावरणीय प्रभाव पड़ेगा। नेपाल को विश्वास में लिए बिना भारत द्वारा अकेले ही इस परियोजना का ढांचा बनाने के संकेत से नेपाल में इस परियोजना के प्रति अविश्वास बढ़ा है। नेपाल उपेक्षित महसूस कर रहा है। भारत पहले भी सिंचाई के लिए हिमालयी नदियों से भारत-नेपाल सीमा पर कई नहरें निकाल चुका है। अब कोशी और गण्डक की योजनाओं से नेपाल आशंकित है। नेपाल के पूर्व जल संसाधन मंत्री दीपक ग्यावली ने कहा ही है - ''यह परियोजना नेपाल में भंयकर समस्याएं खड़ी करेगी। अपने उपलब्ध जल संसाधनों के समीचीन उपयोग हेतु नेपाल को अभी भी कमियों को ठीक करना है।''

बांग्लादेश पर भी इस परियोजना के दूरगामी दुष्परिणाम हो सकते हैं। यह देश अपना 70 फीसदी पानी ब्रह्मपुत्र से लेता है। नदी जोड़ परियोजना बांग्लादेश के अस्तित्व पर प्रश्न खड़ा कर सकती है। प्रस्तावित नदी जोड़ों से बांग्लादेश के सबसे बड़े डेल्टा के खत्म हो जाने की संभावना है। बांग्लादेश ने इस बाबत् अपनी चिन्ता व एतराज प्रकट किया है। भारत सरकार का कहना है कि क्रियान्वयन के समय बात कर ली जाएगी। कार्यदल के अध्यक्ष श्री सुरेश प्रभु का कहना था कि बांग्लादेश को भारत से बारह गुना अधिक प्रति व्यक्ति पानी मिलता

है; अत: उसे चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। यूं नदी जोड़ से बंगाल की खाड़ी के पानी के जमीन पर आ जाने की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता। इससे वहाँ की हजारों हेक्टेयर भूमि बंजर बन सकती है। पर्यावरण विशेषज्ञों का माना है कि इससे बांग्लादेश में बाढ़ और सुखाड़ दोनों ही बढ़ेंगे।

कोलकाता के भारतीय प्रबन्धन संस्थान के विकास एवं पर्यावरण नीति केन्द्र से संबद्ध श्री जयन्त बंधोपाध्याय का कहना है कि यह परियोजना केवल बांग्लादेश के लिए ही चिन्ताजनक नहीं है, इससे दक्षिणी एशिया के सबसे समृद्ध जलचर भी खत्म होंगे। हजारों हेक्टेयर भूमि में खारापन बढ़ने से लाखों लोगों की आजीविका समाप्त हो सकती है। विश्व विरासत घोषित 'सुंदरबन' क्षेत्र पर भी दुष्प्रभाव पड़ेगा। विश्व का यह सबसे बड़ा तटवर्तीय वन पहले ही मिट्टी के खारेपन की समस्या से जूझ रहा है; अब यह समस्या और बढ़ जाएगी। इस परियोजना से बंगाल डेल्टा के अस्तित्व पर संकट उत्पन्न होगा। बांग्लादेशी इंजीनियरों का कहना है कि बांग्लादेश का अस्तित्व मुख्य रूप से नदियों के स्वच्छ जल से ही है। बांग्लादेश इस क्षेत्र का ऐसा अकेला देश है, जहां गंगा, मेघना और बह्मपुत्र... तीन नदियां हैं। ये तीनों एकरूप हो बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं और डेल्टा को सुरक्षित करती हैं। नदी जोड़ से डेल्टा के निचले क्षेत्र में तलछट कम होगी और बंगाल की खाड़ी की समुद्री सतह बढ़ने से बांग्लादेश के 17% इलाके में बसे लोग प्रभावित होंगे। 13 अगस्त, 2003 को बांग्लादेश ने राजनयिक स्तर पर भारत को मौखिक सन्देश भेजा था। सितम्बर, 2003 की संयुक्त नदी आयोग की बैठक में भी उसने यह मामला उठाया। बांग्लादेश की प्रधानमंत्री खालिदा जिया ने सूखे के दिनों में भारत द्वारा पानी खींचे जाने से अकाल, बढ़ता खारापन एवं पारिस्थितिकीय असन्तुलन आदि दुष्परिणामों पर चिन्ता व्यक्त की है। बावजूद इसके यदि भारत नदी जोड़ की जिद्द पर अड़ा रहेगा तो विवाद बढ़ सकता है।

हिमाचल प्रदेश में पुरातन बौद्धगृहों में कालचक्र उत्सव मनाया जाता है। माना जाता है कि जितने अधिक लोग इसमें शामिल होंगे, पूजा उतना ही अच्छा फल देगी। चीन ने ऐसे दो अवसरों पर बांध खोल दिया था। परिणामस्वरूप 114 कि.मी. का रास्ता बह गया था; सत्ताईस पुल बह गए और साथ-साथ 13000 लोग भी। ब्रह्मपुत्र का उद्‌गम मानसरोवर से है। वह भी चीन के नियन्त्रण में है।

वहां इसका नाम साम्पो है। सुना है कि वहां भी बांध बन रहा है। बांध नहीं, यह विवाद के विस्तार की नींव रखी जा रही है। नदी जोड़ इसे और बढ़ाएगी।

पर्यावरणीय चेतावनी : नदी जोड़ एक अप्राकृतिक कार्य है।...प्रकृति विरुद्ध !! पृथ्वी तल का एक बहुत बड़ा भाग पानी से ढका है। वैश्विक जल चक्र में पानी किसी न किसी रूप में अनेक रास्तों से गतिमान रहता है। मानव की समस्त गतिविधियां इसी से चलती हैं। अत: हमें इस ''प्राकृतिक देन'' के विषय में गम्भीरता से अध्ययन करना चाहिए। स्वच्छ पानी वाले तालाब, झीलें और नदियां मानव के पीने के पानी के सतही स्रोत हैं। इनमें लगभग 90,000 बिलियन क्यूबिक मीटर पानी उपलब्ध है। इस पानी में भारत का पर्याप्त हिस्सा है। उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र होने के कारण भारत में वर्षा भी अच्छी होती है। अत: भारत यदि ठीक से पानी का प्रबन्धन करे तो यहां पानी की कमी नहीं हो सकती। भूजल पुनर्भरण ही ठीक से कर लिया जाए तो ही हमारे तालाब, झील व नदियों की समृद्धि बनी रहेगी। धरती के नीचे पर्याप्त पानी होगा, तो नदियां भी ऊपर बहने लगेंगी। दूसरी तरफ नदी जोड़ परियोजना तो एक ऐसे ब्लैक होल की तरह है, जो किसी भी रूप में क्रियान्वित किए जाने पर भारत के सारे संसाधनों को खा जाएगी... पैसा, पानी, वनस्पति और मिट्टी की उर्वरा शक्ति भी। हमें समझना चाहिए कि भिन्न नदियों के पानी में केवल कठोर या मृदु तत्त्व का ही अन्तर नहीं होता, खनिज लवण, पारदर्शिता, वायु का फैलाव, विद्युत रासायनिक तत्व एवं चिकित्सकीय शक्ति भी अलग-अलग होती है। इन्हीं के कारण इनमें पाए जाने वाले जीवों में विविधता होती है। हिल्सा मछली केवल गंगा में ही पाई जाती है। डॉल्फिन भी कुछ ही नदियों में होती है। चिड़ियों व कीटों की विविधता भी भिन्न-भिन्न होती है। अमेरिका में जब टेलिको बांध पूरा होने वाला था, बहुत धन व्यय होने के बावजूद कोर्ट ने इस पर रोक लगा दी। क्यों?... क्योंकि केवल इसी नदी में छोटी डार्ट मछली होती है। यह और कहीं नहीं पाई जाती। सरदार सरोवर में जो जीव-जन्तु पाये जाते थे; उनमें से कई जीव ऐसे थे... जो कहीं और नहीं पाये जाते।

नदी जोड़ परियोजना तो एक ऐसे ब्लैक होल की तरह है, जो किसी भी रूप में क्रियान्वित किए जाने पर भारत के सारे संसाधनों को खा जाएगी।

इस परियोजना में केन-बेतवा नदी जोड़ पर बनने वाले ग्रेट गंगऊ बांध संबंधी कुछ अध्ययन प्राप्त हुए हैं। इस बांध के दक्षिण का एक हिस्सा पन्ना संरक्षित वन के अन्तर्गत आता है। पन्ना रिजर्व की वेबसाइट के अनुसार रिजर्व के बीच से दक्षिण से उत्तर की ओर बहने वाली केन नदी मगरमच्छों और घड़ियालों का समृद्ध निवास स्थान है। पन्ना संरक्षित क्षेत्र से करीब 55 कि.मी. तक फैला हुआ यह भाग नदी का सबसे कम प्रदूषित समृद्ध क्षेत्र है। प्रस्तावित बांध के कारण इस रिजर्व के महत्वपूर्ण हिस्से तो डूबेंगे ही, जलाशय के आस-पास गाद जमाव से वन्य जीवों को अविरल बहता स्वच्छ पानी नियमित नहीं मिल पाएगा। बहाव के निचले हिस्से में स्थित घड़ियाल अभयारण्य भी ग्रेटर गंगऊ बांध से प्रभावित होगा। अकेले ग्रेट गंगऊ बांध में 3,750 हेक्टेयर से ज्यादा जंगल क्षेत्र डूब में आयेगा। यहां लुप्तप्राय: प्रजाति- 'स्याहगोश चीते' के मिलने की अभी जो थोड़ी-बहुत संभावना है, वह भी समाप्त हो जाएगी। नदी जोड़ में यहां वन्य जीव एवं समस्त जैव विविधता भी नष्ट होगी ही; वर्षा जल सोखने की प्रक्रिया भी बाधित होगी। परिणामस्वरूप गैर बरसाती मौसम में आस-पास के भूजल संसाधनों में भी भारी कमी आ जाएगी। केन्द्र सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने भी पन्ना रिजर्व व आस-पास की पर्यावरणीय क्षति पर आपत्ति की है। पिछली कई परियोजनाओं से देश के बहुत से वन क्षेत्र नष्ट हो चुके हैं। अब इसमें भी कई वन डूब क्षेत्रों में आ जाएंगे। इसीलिए इस बार वन मंत्रालय सतर्क दिखता है।

सरकारी स्तर पर विरोधाभास का अन्दाजा लगाएं। एक ओर तो सरकार वन लगाने की बात कर रही है, किन्तु स्वाभाविक रूप से उगे वन क्षेत्रों की परवाह नहीं कर रही; जबकि स्वाभाविक वन ज्यादा समृद्ध होते हैं। अपने आप जो वृक्ष उगते हैं, वे उस क्षेत्र की जलवायु के अनुकूल होते हैं; जबकि जो वृक्ष योजना बनाकर उगाए जाते हैं, उन्हें मनुष्य अधिकतर अपना लाभ देखकर लगाता है। इनमें जलवायु, मिट्टी व पारिस्थितिकी का ध्यान नहीं रखा जाता। आज बहुत से ऐसे क्षेत्रों में सफेदा (यूकेलिप्टस) वृक्ष लगा दिया गया है, जहां भूमि में नमी नहीं है। यह पेड़ धरती की नमी को सोखने वाला है। अत: यह भूजल का स्तर गिरा देने वाला साबित हो रहा है। उत्तरांचल में बांझ और बुराश के श्रेष्ठ पेड़ों की जगह सब ओर चीड़ के वृक्ष लगाये जा रहे हैं। जबकि चीड़ के नीचे घास भी नहीं उग पाती। चीड़ धरती का पानी पी लेता है। यह भी सोचना है कि आज जो वनस्पतियां नष्ट होंगी, वे एकदम तो उग नहीं जाएंगी। उन्हें उगने में समय लगेगा। इस बीच पर्यावरण में ऑक्सीजन तथा जल पुनर्भरण संबंधी हानि होगी, भूक्षरण होगा, वातावरण में गर्मी व सूखापन होगा... इस

सबका कोई हिसाब नहीं जोड़ा गया है। प्रत्येक जंगल में कुछ विशिष्ट पेड़-पौधे व जीव जन्तु होते हैं। वन नष्ट होने के बाद वे सब कहां से आएंगे? इस तरह तो कई दुर्लभ प्रजातियां समाप्त हो जाएंगी। ध्यान रहे कि प्रकृति का कोई भी पदार्थ व्यर्थ नहीं है। सभी परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। पिछली शताब्दी में यह सत्य भुला दिया गया था। इसी के दुष्परिणाम भिन्न रूप में आज मानव भोग रहा है। पानी की समस्या भी इसी जीवन-चक्र से जुड़ी है। एक वृक्ष हमें केवल फल-फूल ही नहीं देता, वह जीव-जन्तुओं का निवास भी होता है; उससे लकड़ी तो मिलती ही है। गोंद, तारपीन का तेल, रंग, औषधियां आदि अनेक रोजमर्रा की जरूरतों की पूर्ति करने वाली वस्तुएं भी जंगलों से ही प्राप्त होती हैं। किसी-किसी वृक्ष का तो प्रत्येक भाग मानव के लिए बहुत उपयोगी होता है। पेड़ स्वयं में एक तालाब होता है। यह पानी रिचार्ज करता है; पर्याप्त वर्षा में सहायक होता है; मिट्टी को उर्वर बनाता है। सूखी पत्तियां पानी को वाष्पित होने से रोक कर भूमि के नीचे पहुंचाती रहती हैं।

आजादी पूर्व के एक अध्ययन से पता चलता है कि छोटा नागपुर क्षेत्र में तब गर्मी के मौसम में दोपहर बाद प्राय: रोज ही वर्षा हो जाती थी। अत: यह क्षेत्र चाय बागानों के लिए उपयुक्त था। वनों के कट जाने के कारण वर्षा का होना बन्द हो गया और चाय बागान समाप्त हो गए। वनों के नष्ट हो जाने से वर्षा के सन्तुलन में भी फर्क आ गया। देश में सूखा-अकाल की घटनाओं के पीछे छिपा कारण इसी उदाहरण में निहित है। इसे समझ कर यदि उपाय किए जाएं तो नदी जोड़ की जरूरत ही नहीं रहेगी। दरअसल प्रत्येक क्षेत्र में वर्षा का एक औसत होता है। अचानक एक साथ ज्यादा पानी बरसने से औसत तो नहीं बिगड़ता, लेकिन खेती को पानी का लाभ नहीं मिल पाता। इस तरह सूखे के दिन बढ़ गए हैं। वर्ष 2005 में पानी तो पहले जितना ही बरसा, लेकिन कुछ दिनों में ही बहुत पानी गिर गया और फिर कई दिन तक बिल्कुल बरसात नहीं हुई। बारिश के इस असन्तुलन से फसलों को बहुत नुकसान पहुंचा। जब फसल सूख गई, उसके बाद पुन: दो-तीन दिन में खूब पानी बरस गया। मुम्बई में भी गत वर्ष तीन-चार दिनों में ही एक साथ 930 सेंटीमीटर पानी बरस गया। नतीजा क्या हुआ?... बाढ़ आई। अरबों रु. की क्षति हो गई, जनजीवन बिल्कुल ठप्प हो गया। बाढ़ से जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। मुंबई के लोगों और अधिकारियों ने कभी स्वप्न में भी इस बात की कल्पना नहीं की होगी। यह सब पर्यावरण असन्तुलन के कारण ही हुआ।

नदी परियोजना के नियोजकों को यह समझने की जरूरत है कि बाढ़ व सूखा क्यों आते हैं। नदी जोड़ ऐसा असंतुलन बढ़ाएगा। दरअसल वनों की ये विशिष्टताएं नदी के पानी की विशिष्टता से जुड़ी होती हैं। नदी का चरित्र भी उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थिति ही तय करती है। नदियां निर्जीव नहीं होतीं। सड़क व टेलीफोन की तरह नदियों को नहीं जोड़ा जा सकता। नदियां सजीव होती हैं। इनकी जैव विविधता पर निश्चित रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए, वरना प्रकृति के प्रति प्रतिकूल आचरण के खतरनाक परिणाम भोगने होंगे। नदियों को जोड़ने से जीन बैंक का सन्तुलन भी बिगड़ जाएगा और असाध्य रोग जन्म लेंगे।

हमें समझना चाहिए कि हम भारतीयों की नदियों पर इतनी आस्था क्यों है? गंगा नदी विशेष रूप से पूज्य क्यों है?....क्योंकि एकमात्र गंगा के पानी में ही यह पर्यावरणीय विशेषता है कि उसे कितने ही समय तक रखें, वह पीने योग्य बना रहता है। हिमालय पर्वत से अनेक नदियां निकलती हैं। गंगा और यमुना तो बिल्कुल आस-पास से ही निकलती हैं। क्या यह विचार करने की बात नहीं है कि गंगा के पानी में ही यह विशेषता क्यों है? ''गंगा में स्नान करने से पाप धुल जाते हैं''- यह विश्वास संभवत: इसके पानी से कुछ रोगों के निदान होने के कारण हुआ होगा। इसमें निश्चित रूप से कुछ चिकित्सकीय गुण होंगे। नदी जोड़ने से इसका पानी अप्राकृतिक रूप से अन्य नदियों के पानी से मिलेगा, इसका यह गुण नष्ट हो जाएगा। दूसरी नदियों तक पहुंचते-पहुंचते गंगा का पानी अमृतमयी नहीं रहेगा।

नदी जोड़ से इन नदियों में रहने वाले जीव-जन्तुओं के जीवन पर भी दुष्प्रभाव पड़ेगा। एक तो उन्हें जिस पानी को पीने की आदत पड़ी हुई है, उससे भिन्न पानी पीना अनुकूल नहीं पड़ेगा। यही हम मानवों के सन्दर्भ में भी कहीं-कहीं देखते हैं। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं जीवों की दिनचर्या में भी अन्तर आएगा, जिससे उनकी प्रजनन क्षमता कम हो सकती है या समाप्त भी हो सकती है। इसी प्रकार उनकी उम्र में भी कमी आ सकती है। विश्व वन्य जीव कोष के शोधकर्ताओं ने बताया कि यदि मानव आबादी का दबाव न हो तो इजिप्शियन क्षेत्र में पाई जाने वाली सिनाई बैटन ब्लू तितली अगले 200 सालों तक जीवित रह सकती है। इनका कहना है कि यदि वैश्विक तापमान में वृद्धि व अन्य प्रतिकूल मानवीय क्रियाएं न हों तो छोटी से छोटी तितली भी 200 साल तक बनी रह सकती है। इस पृथ्वी के जीवन-चक्र के लिए पानी के अन्दर व बाहर के कौन से जीव-जन्तु परस्पर कितने उपयोगी हैं ; पूरी तरह यह जानना अत्यन्त जटिल ज्ञान

है, क्योंकि ऐसे अध्ययन बहुत कम हुए हैं। पृथ्वी के वन क्षेत्र अपने आस-पास कितनी सुन्दरता बिखेरते रहते हैं, जिससे आकर्षित होकर दूर देशों से लोग इन्हें देखने के लिए आते हैं। इससे आस-पास के निवासियों की आजीविका भी चलती है। वनों के डूब में जाने से क्षेत्रीय सौन्दर्य की हानि का आकलन कौन करेगा? सूक्ष्म वनस्पति की हानि का तो जाने क्या परिणाम हो?

नदी जोड़ परियोजना की योजना में भारत की पारिस्थितिकी की भी पूरी तरह उपेक्षा की गई है। हम जानते हैं कि प्रत्येक नदी अपनी-अपनी परिस्थिति के हिसाब से बहती है। एक ही पर्वत से निकली हुई गंगा एवं यमुना बिल्कुल अलग-अलग रास्ते से बहती हुई बहुत दूर जाकर पुन: एक-दूसरे से मिल जाती हैं। ऐसा क्यों हुआ है? यह प्रकृति के ढलान, बहाव और दिशा-दशा के अनुकूल तय होता है। प्रकृति जानती है कि कहां से निकलने वाली धारा दूसरी धारा से कहां मिले। कुदरत ने उनके मिलान का मार्ग व स्थान स्वत: तय कर दिया है। इसका कोई विकल्प हमारे पास नहीं है। अत: हम खुद कुदरत को निर्देश देने की कोशिश न करें, तो बेहतर होगा।

सन् 2000 में भूवैज्ञानिक ग्लीक ने लिखा था कि बड़े बांध उपयोग की दृष्टि से तो खरे उतरे ही नहीं, पारिस्थितिकी को भी इनसे बहुत हानियां उठानी पड़ी हैं। अत: विकसित देशों में इन्हें हटाने और नदी के बहते रहने देने के लिए आन्दोलन जोर पकड़ रहे हैं। एक पारिस्थितिकीय अध्ययन (कोसलान्जा) में कहा गया है कि पारिस्थितिकी से जो लाभ मानव को मिलता है, वह समस्त वैश्विक उत्पाद से लगभग दुगुना है। यह आंकड़ा लगभग 33 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर प्रतिवर्ष है जबकि हमारे वैश्विक उत्पाद की कीमत लगभग 18 ट्रिलियन अमेरीकी डॉलर है।

अब जरा नदी जोड़ से अन्य हानि की भी चर्चा करें जो नदियों के स्थानान्तरण से जन्म ले सकती हैं। मिट्टी में भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन, नदी की संरचना में बदलाव आदि ऐसी ही हानि हैं। जवाहर लाल विश्वविद्यालय के भूगर्भ शास्त्र के प्रोफेसर श्री वी. राजमणि के अनुसार नदी... भूमि की संरचनात्मक विशिष्टता एवं जलवायु के अनुसार ही बहती है। स्थानीय पारिस्थितिकी और तटवर्ती क्षेत्र भी भूमि की कुछ मूलभूत व्यवस्थाओं के अनुसार ही विकसित होते हैं। भारत की खासकर प्रायद्वीपीय नदियां भूगर्भ विज्ञान की दृष्टि से कई लाख वर्ष पुरानी है।

ये नदियां पर्याप्त जलवायु परिवर्तनों, मानसून की विविधता, समुद्र तल परिवर्तन और विवर्तनिक संक्रियाओं के अनुकूल होने के कारण ही इतने लम्बे समय से जिन्दा हैं। भूगर्भ, भूआकृति तथा जलवायु आदि मिलकर ही निचले हिस्सों में कृषि क्षेत्र, बाढ़ के मैदान, डेल्टा व ऊपर के क्षेत्र में जंगल बनाते हैं। दरअसल नदियों का बहना एक निरन्तर चलने वाली एक सुव्यवस्थित एवं प्राकृतिक व्यवस्था है। अत: धरती के ऊपर से नदी जोड़ का तो विचार ही प्रकृति विरुद्ध है, जिसे किसी भी प्रकार वांछनीय नहीं कहा जा सकता। नदियों का यदि जोड़ने का भाव मन में है, तो समझना होगा कि धरती के भीतर की जल शिराओं को जोड़ने के प्रयास हों। नदियां अपने आप प्रवाहमान बनी रहेंगी। क्या कोई समुद्र को बांध सका है? जल के हर रूप में उसका अपना एक स्वभाव होता है। उसके प्रवाह की दिशा बदलने से पारिस्थितिकी पर दुष्परिणाम पड़े बिना नहीं रहेंगे। इन सब परिस्थितियों में किसी भूमि के वानस्पतिक आवरण हटने व उसके रेगिस्तान बनने की संभावनाओं पर समग्रता से ध्यान देने की जरूरत है।

समझना होगा कि कोई भूमि रेगिस्तान कैसे बनती है? बाढ़ क्यों आती है? अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में अलग-अलग क्रम में भूगर्भ की रिचार्ज क्षमता को जाने बगैर अधिक उपज लेने के लालच से जमीन रेगिस्तान बन सकती है। समयानुसार बाढ़ का अभाव इस प्रक्रिया को बढ़ा सकता है। नदी में बाढ़ का आना ज्यादा जरूरी है। बांधों से नदी के द्वारा आने वाली मिट्टी का आना रुक जाएगा। इससे तट व डेल्टा दोनों समाप्त हो जाएंगे। बंगाल की खाड़ी में नदियों से आने वाला पौष्टिक मीठा पानी यदि कम आएगा तो समुद्री जीवन पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। समुद्र तथा तटवर्ती क्षेत्रों का खारापन बढ़ जाएगा। नदियों में होती पानी की कमी के कारण केरल के तटवर्ती क्षेत्र अभी ही इस संकट से जूझ रहे हैं; यह एक बड़ा खतरा है। आइए, अब अन्य खतरों पर चर्चा करें।

बांधों से सिंचाई के लिए जो नहरें निकाली जाएंगी, उन नहरों के लिए पहाड़ों में कई मील लम्बी सुरंगें बनाने का भी प्रस्ताव है। इन सुरंगों के लिए विस्फोटकों का उपयोग होगा। इससे धरती के निचले हिस्से की प्लेटों को धक्का लगेगा व भूकम्प जैसी स्थितियां और बढ़ जाएंगी। इससे भूक्षरण भी बहुत बढ़ जाएगा व भूमि की रिचार्ज क्षमता घट जाएगी। बांधों से पहले ही कई नदियों की प्राकृतिक संरचना बिगड़ चुकी है... अब बहुत सारे बांध बनेंगे, उनसे सारी नदियों की

संरचना अस्त-व्यस्त हो जाएगी। नदियों को बांधने से बहुत गाद जमाव होगा। परिणामस्वरूप नदी बहाव के मार्ग अवरुद्ध हो जायेंगे। दामोदर नदी का उदाहरण पहले ही हमारे सामने है। गाद जमाव से नदी का प्रवाह कम हो जाता है; नदी मार्ग में नए टापू बनने से नदी को अपना रास्ता बदलना पड़ता है। इससे बाढ़ के दुष्प्रभाव और बढ़ते हैं। प्राय: बाढ़ से मिट्टी चारों तरफ फैल जाती है या फिर मुहाने पर जाकर रुकती है और ज्वार-भाटा उसे समुद्र में पहुंचा देता है। प्रवाह की गति कम होने से समस्या और गम्भीर हो जाएगी। गाद जमाव से नदी का तल ऊंचा होता है। अब क्या करें ? या नदी को साफ करें या फिर उसके तटबन्ध को ऊंचा करें। यह कोई निदान नहीं है। इस प्रकार तटबन्ध कब तक ऊंचे किए जाते रहेंगे? बंगाल की खाड़ी और पानी के घनत्व का अंतर्संबन्ध है। इसमें कम खारे पानी की पतली सतह है। यह सतह समुद्र का तापमान ऊंचा रखती है, जो कि 28 डिग्री सेन्टीग्रेड से ऊपर होता है। इससे गर्मी में मानसून का घनत्व बढ़ता है। यदि यहां पानी कम आएगा, तो मानसून पर दुष्प्रभाव पड़ेगा।

इस परियोजना का एक पर्यावरणीय संकट अधिक दोहन से जुड़ा है। हम जानते हैं कि नदी जोड़ों का कार्य अंतत: निजी हाथों को ही सौंप दिया जाने वाला है। भारत सरकार के पास इतने धन की व्यवस्था नहीं है कि वह ये कार्य बिना कर्ज कर सके। निजी कम्पनियां पैसे कमाने की दृष्टि से भारत की धरती से और दोहन करेंगी ही; जैसा कि अभी ठण्डे पेय, शुद्ध जल एवं बोतलबंद पानी के लिए किया जा रहा है। इस दोहन से भूजल का जलस्तर नीचे आएगा और इसमें अनेक हानिकारक तत्व ऊपर आयेंगे। हालांकि सरकार का कहना है कि इस परियोजना का एक उद्देश्य भूजल के अतिरिक्त दोहन पर नियन्त्रण पाना भी है, पर देखें तो सरकार इन शीतल पेय बनाने वाली कम्पनियों को कहां रोक रही है? शीतल पेयों में पाए गये दूषित तत्वों की रिपोर्ट पर सरकार ने क्या किया? दरअसल विदेशी कम्पनियों का यहां की धरती व यहां के लोगों से कोई जुड़ाव तो है नहीं। अत: देश की पारिस्थितिकी रहे या बिगड़े, उन्हें क्या? आखिर देश के 70 प्रतिशत भूजल भण्डारों में कमी की समस्या ग़लत नीतियों और विकास की ग़लत अवधारणाओं के फलस्वरूप ही तो हुई है। अभी जो शेष बचे 30 प्रतिशत भूजल भण्डार हैं; वे बाढ़ क्षेत्रों के हैं। यहां भी पानी पीने लायक नहीं रहा है। बंगाल के पानी में आर्सेनिक, राजस्थान, उ.प्र., म.प्र. में फ्लोराइड, पंजाब व हरियणा में नाइट्रोजन जैसे प्रदूषण आ ही गए हैं।

सचमुच हमारे पर्यावरण पर आज चौतरफा हमला है। व्यापार पर नियन्त्रण के लिए तो अंतर्राष्ट्रीय संगठन बन गया, लेकिन पर्यावरण के लुटेरों को नियन्त्रित करने वाला कोई संगठन आज तक नहीं बन सका। हां ! लुटेरों को बढ़ावा देने वाली ताकतें अवश्य अलग-अलग वेश बनाकर सामने आ रही हैं। विश्व बैंक भी कुछ ऐसे राष्ट्रों के हाथों की कठपुतली बना हुआ है, जिन्हें दूसरों के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा करने व धन कमाने में ही सबसे ज्यादा रुचि है। हालांकि ये देश यह नहीं सोच पा रहे कि ऐसी परियोजनाएं पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी की भी बहुत हानि करने वाली होती हैं। यदि दक्षिणी अमेरिका में वनों के नष्ट होने से यूरोप व दूसरे गोलार्द्ध पर प्रभाव पड़ सकता है तो प्रकृति के अत्यंत प्रतिकूल एवं प्रकृति से छेड़छाड़ करने वाली नदी जोड़ परियोजना का दुष्प्रभाव विश्व स्तर पर क्यों नहीं होगा? ये सभी विषय विचारणीय हैं। सरकार व लोगों को चाहिए कि वे इस पर सोचें और तद्नुसार व्यवहार करें।

सांस्कृतिक दुष्प्रभाव : भारत में लगभग 80 सांस्कृतिक क्षेत्र हैं। सभी क्षेत्रों की अपनी-अपनी विविधताएं हैं; सभी अपने-अपने प्रदेश की नदियों के प्रति आस्था रखते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही गंगा को मां कहते हैं। इन नदियों के तटों पर स्थान-स्थान पर बहुत से मन्दिर बने हुए हैं। लोग नदी में स्नान करके ही मन्दिर में प्रवेश करते हैं। यदि इन नदियों का स्वामित्व कुछ गिने-चुने लोगों के हाथों में चला गया तो इनमें स्नान करने वालों को पैसा देना पड़ेगा। ऐसा जनता को नागवार गुजर सकता है। जनता जब इस सारी वास्तविकता को समझेगी, तो कड़ा विरोध शुरू हो जाएगा। धार्मिक आस्था से छेड़छाड़ अच्छी नहीं होती; क्योंकि आस्थावान लोग अपनी धार्मिक वृत्ति के लिए कुछ भी करने पर उतारू हो जाते हैं। नदियों पर प्राय: मेले जुड़ते रहते हैं। कुंभ, महाकुंभ, संगम स्नान...। तीर्थ स्थान आदि में बाधा पड़ना जनता के लिए असह्य होगा। अमरनाथ गुफा में शिवलिंग के अप्राकृतिक होने की भ्रामक खबर से ही कितना बवाल हुआ। भारत में कई अवसरों पर पांच या कई तीर्थों के जल से स्नान की परम्परा भी है। नदी जोड़ से कौन सी नदी खास रह जाएगी? भारत में मरते समय गंगा जल मुंह में डालने की परम्परा है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। बिना गंगा जल के बहुत से लोगों की पूजा बेशक सम्पन्न नहीं होगी। नदी जोड़ के बाद गंगाजल अक्षय नहीं बचेगा। तब क्या होगा? असल में गंगा ही नहीं, हर क्षेत्र में बहने वाली नदी पर उस क्षेत्र के लोगों की अपार श्रद्धा होती है। बहुत से अवसरों पर उसका पूजन होता है। यह हर नदी के प्रति आस्था का सवाल है। जो आदिवासी प्रदेश हैं, उनकी भी अपनी संस्कृति है। उनकी एक विशिष्ट जीवनधारा है। प्रत्येक समुदाय की

अपनी लोक संस्कृति होती है। विस्थापित होकर ये संस्कृतियां विलुप्त हो सकती हैं। मानव विज्ञान के अध्ययनों में इनका बहुत महत्व होता है। यहां तक कि भाषा के अध्ययनों में भी इनकी बोलियां बहुत उपयोगी भूमिका अदा करती हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सारे काम व परम्पराएं पानी से जुड़ी हुई हैं। सन्थालों में एक प्रथा 'दा बापला' अर्थात् पानी से शादी की है। इसमें लड़का व लड़की दोनों की शादी पहले पानी से होती है। बौद्ध धर्मावलम्बियों में जब विवाह तय होता है, तो माता-पिता एवं युवक-युवती को पानी के बीच में खड़ा करके यह रस्म पूरी की जाती है। कई समुदायों में विवाह के समय उस परिवार की महिलाएं जाकर नदी को निमन्त्रण दे आती हैं। नदियों के जुड़ने से नदी... नदी न रहकर, एक बनावटी धारा हो जाएगी। इस तरह परियोजना धारा की गुणवत्ता से खिलवाड़ उसके अध्यात्म के साथ भी छेड़छाड़ करेगी। इस सांस्कृतिक संकट के बारे में भी सरकार सोचे। एक ओर सरकार संस्कृति और परम्पराओं के संरक्षण के लिए एक पूरा मंत्रालय ही चला रही है, दूसरी ओर उसे खुद ही संस्कृति की चिंता नहीं। जरूरी है कि नदी जोड़ संबंधी सरकारी समिति में संस्कृति विभाग के सदस्य भी शामिल किए जाएं। भारत के सांस्कृतिक पक्ष को नकार कर नदी जोड़ को लागू करना घातक होगा। चेतने की जरूरत है कि जहां मात्र एक मंदिर का मुद्दा सत्ता पलट सकता है, वहां इतनी नदियों की संस्कृति पर संकट आया तो क्या होगा?

आर्थिक खतरे : सरकार ने इस परियोजना का कुल व्यय 56,000 करोड़ बताया था। यह राशि वर्ष 2002 में प्रस्तावित थी। पुनर्वास समेत कई अहम खर्चे इसमें जोड़े नहीं गए हैं। कार्यदल ने तभी संभावना व्यक्त की थी कि पूरा खर्च 100 हजार करोड़ तक जा सकता है। यह राशि वर्ष-2002 में प्राप्त सम्पूर्ण भारतीय राजस्व आय का 250 प्रतिशत तथा वार्षिक सकल घरेलू उत्पाद का एक-चौथाई है। यह बजट 1950 से अब तक भारत के स्वीकृत कृषि बजट के दुगुने से भी ज्यादा है। इसमें शहरी और ग्रामीण क्षेत्र की 8000 वर्ग कि.मी. भूमि एवं 5,00,000 हेक्टेयर वन भूमि डूब में आयेगी। डूबे वन क्षेत्रों का मूल्य कुल लागत में नहीं गिना गया। एक पेड़ ही जल का कितना रिचार्ज करता है; कितनी लकड़ी देता है; फल देता है; कितनी ऑक्सीजन देता है और कितनी बाढ़ व भूक्षरण रोकता है। कई पेड़ों का औषधीय मूल्य भी होता है। इस हानि का कोई हिसाब नहीं रखा गया। जंगलों पर कितने स्थानीय निवासियों का जीवन आधारित है, यह भी नहीं देखा गया। जाने कितने जीवों को इनसे भोजन मिलता है। परियोजना लागत तय करते वक्त इसका कोई हिसाब नहीं लगाया गया।

डेल्टा व बंदरगाहों को जो हानि होगी, उसे भी नहीं सोचा गया। केवल ऊपरी लाभ गिनाए गए हैं। इन जलाशयों व नहरों से जो कुल लाभ प्रस्तावित हैं और जो व्यवहार में लाभ होगा, यदि उपर्युक्त हानियों को देखा जाए तो आर्थिक रूप से लाभ के मुकाबले में हानि ज्यादा होगी। बहुत सीधा सा गणित है "बड़े बांध-बड़े नुकसान, छोटे बांध-छोटे नुकसान।" प्रकृति के विरुद्ध ले जाने वाली इतनी भारी-भरकम परियोजना को पूरा करने तक का ही संकट नहीं है; इसमें जितने बांध बनेंगे, नहरें बनेंगी, पानी ऊपर चढ़ाना होगा, इस सबकी सुरक्षा भी सरकार को करनी होगी। सरकार प्रत्येक बांध पर प्रस्ताव तैयार करेगी। इनसे गुजरने वालों से रकम वसूलेगी। आज आतंकवादी गतिविधियों के चलते इस प्रकार के भय हमेशा बने रहते हैं। इसके लिए बहुत सारे धन की आवश्यकता और होगी। रखरखाव के लिए पैसा चाहिए। यह धन कहां से आएगा? अभी ऐसी कितनी ही सिंचाई परियोजनाएं पैसे की कमी से रुकी पड़ी हैं। वर्तमान सिंचाई परियोजनाओं को पूरा करने के लिए ही अभी 80,000 करोड़ रुपयों की ज़रूरत है। हम पहले इन्हें ही पूरा कर लें, वही काफी है। यह तो वही बात हुई कि 'हाथी खरीद लिया, खाने के लाले पड़े हैं।' यूँ तो यह परियोजना लागू ही नहीं हो सकेगी। एक जोड़ बनते-बनते ही इसकी हवा निकल जाएगी। यदि सरकार हठ ठान ले कि इस परियोजना को पूरा करना ही है, तो फिर भारत को आर्थिक गुलामी के फंदे से कोई नहीं उबार सकेगा.... स्वयं आने वाली सरकारें भी नहीं।

अभी ऐसी कितनी ही सिंचाई परियोजनाएं पैसे की कमी से रुकी पड़ी हैं। वर्तमान सिंचाई परियोजनाओं को पूरा करने के लिए ही अभी 80,000 करोड़ रुपयों की ज़रूरत है। हम पहले इन्हें ही पूरा कर लें, वही काफी है।

निष्कर्ष

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से यह साफ हो जाता है कि इस परियोजना में प्रस्तावित लाभ दिवास्वप्न ही साबित होंगे। जल परिवहन के मार्ग में बांध सहायक नहीं, बल्कि रुकावट हैं। परियोजना से पर्यावरण सुधरेगा नहीं, बल्कि पर्यावरण की असीमित हानि होगी। बाढ़-सुखाड़ समाप्त नहीं होंगे, बल्कि और बढ़ते जाने की आशंका है। इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता। जहां तक सिंचाई का सवाल है... सिंचाई होगी, कुछ अतिरिक्त भूमि पर कृषि भी की जा सकेगी... किन्तु कुछ सालों बाद इस तरह सिंचित भूमि में खारापन एवं दलदल हो जायेगा।... हमारे पास अच्छे विकल्प

हैं; जो लम्बे समय तक भूमि को सुरक्षित रखेंगे। दूसरी बात यह कि बहुत सी अच्छी उपजाऊ भूमि डूबो कर नई भूमि को सिंचित करना कहां की बुद्धिमत्ता है? अब पीने के पानी का संकट खत्म करने के दावे की बात करें। परियोजना से पीने के पानी का संकट कैसे खत्म होगा? सम्पन्न लोगों को तो पानी मिल रहा है; समस्या तो गरीब की है। महंगा पानी खरीदकर वह नहीं पी सकता। पानी, अनाज सभी तो महंगा होगा, तो ग़रीब खाएगा क्या? अत: जीवन स्तर सुधरने की बात भी यहीं खत्म हो जाती है। जिनका जीवन स्तर ठीक है, उनके जीवन स्तर को सुधारने का दावा ही क्या है? रोजगार का यथार्थ भी सामने है। बहुत सी कृषि भूमि डूबेगी, वन क्षेत्र डूबेंगे। इसी से जाने कितनों की आजीविका के रास्ते बन्द होंगे। बड़ी ढांचागत परियोजनाओं में मशीनों की ही प्रमुखता होती है। मशीनों के आगे कितनों को रोज़गार मिलेगा? हां! विस्थापन की प्रक्रिया कितनों को बेरोज़गार अवश्य कर देगी। अभी पिछले बांधों के विस्थापित ही स्थापित नहीं हो सके तो भावी विस्थापितों की स्थापना पर कोई कैसे यकीन करे?

अब जरा बिजली उत्पादन के दावे का निचोड़ देखें तो सच्चाई यह है परियोजना निर्माण में खर्च होने से बिजली बचेगी, तभी तो मिलेगी। पानी को ऊपर चढ़ाने के लिए ही 2327 मेगावाट बिजली की आवश्यकता होगी और भी कई तरह से बिजली की खपत होगी। यह गणना केवल प्रायद्वीपीय नदियों के लिए है।

स्पष्ट है कि परियोजना के प्रस्तावित लाभ तो मिलेंगे नहीं। हां ! कुछ ऐसी हानियाँ अवश्य होंगी, जिनकी भरपाई असंभव होगी। जो पारिस्थितिकी बिगड़ेगी, उसे कैसे सुधारा जायेगा? वन 1-2 सालों में तो खड़े हो नहीं जायेंगे। भूकम्प व भूक्षरणों का होना निरंतर प्रक्रिया है । पूरा विश्व इस समय इस समस्या को झेल रहा है। जैव विविधता.... जैविकी की हानि की पूर्ति कैसे होगी? विस्थापितों का दर्द कौन बांटेगा? बीमारियों की पूरी आंशका है। इसके साथ ही देश में अमीर और गरीब के मध्य का अन्तर, जो अभी भी बहुत है.... तब और बढ़ जायेगा। आपराधिक वृत्तियाँ भी जोर पकड़ेंगी। विश्व-पर्यावरण पर भी दुष्प्रभाव अवश्यंभावी है। व्यक्ति, समूह, राज्य व राष्ट्र स्तर पर विवाद और बढ़ जायेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय विवाद संभवत: इतने न बढ़ें, अन्तर्राज्यीय विवादों का बढ़ना सुनिश्चित ही है। पूर्व अनुभव से स्पष्ट है कि 50 वर्षों के विवाद आज भी अनसुलझे हैं। जो देश आज विश्व बन्धुत्व की बात करता है, कल वह अपने ही गृह कलह में बुरी तरह घिर जायेगा।

सोचने की बात

सोचने की बात है कि 1971 से जब परियोजना का विचार आया, तब से 2002 तक इस पर बड़े-बड़े विशेषज्ञ, चीफ इंजीनियर अध्ययन-विश्लेषण करते रहे। वैचारिक व व्यावहारिक स्तर पर नदी जोड़ को स्वीकारा व नकारा जाता रहा है। अन्ततः एक सरकार ने इसे लागू करने का मन बनाया। सरकार ने अध्ययन कराने में ही करोड़ों रु. खर्च कर दिये हैं। अभी तक किसी सही निष्कर्ष पर पहुंचा नहीं गया तो ऐसी जटिल व महंगी परियोजना से सरकार क्यों चिपकी हुई है? जबकि हमारे पास इससे सरल, सादे, कम खर्चीले तथा ज्यादा स्थाई विकल्प हैं।... और भी कुछ सवाल हैं कि इसके विरोध का जवाब क्यों नहीं आ रहा? सारी राजनैतिक पार्टियां इस पर चुप क्यों हैं? राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् भी इस पर मौन है। यह मौन ही इस परियोजना का सच है।

सवाल हैं कि इसके विरोध का जवाब क्यों नहीं आ रहा? सारी राजनैतिक पार्टियां इस पर चुप क्यों हैं? राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् भी इस पर मौन है। यह मौन ही इस परियोजना का सच है।

नई सरकार की चुप्पी चाहे परियोजना को दरकिनार करने के लिए हो अथवा चुपचाप लागू करने के लिए... समाज के लिए यह समय नदी जोड़ परियोजना के भिन्न पहलुओं को पहचानने तथा तदनुसार कार्रवाई करने का है। सरकार को भी चाहिए कि नदी जोड़ पर पहले जनमत प्राप्त करे। जब तक सरकार नदी जोड़ की बाबत् प्रस्तावित लाभान्वितों को सन्तुष्ट नहीं करती, उसे नदी जोड़ परियोजना शुरू ही नहीं करनी चाहिए। ...सरकार ने इस परियोजना के विवरण अपनी वेबसाइट पर दर्ज करने के अलावा कुछ नहीं किया। हालांकि सरकार जानती है कि वेबसाइट उसके प्रस्तावित लाभान्वितों की पहुंच और आदत से अभी बहुत बाहर है। कई जगह तो बिजली, टेलीफोन ही नहीं है, इंटरनेट... वेबसाइट की कौन कहे।

सरकारों को इतनी बड़ी और दूरगामी परिणाम/दुष्परिणाम वाली परियोजना लागू करने से पहले इसे वेबसाइट की खोल से बाहर निकालकर लोगों से सीधे और जमीनी संवाद की कवायद करनी चाहिए।

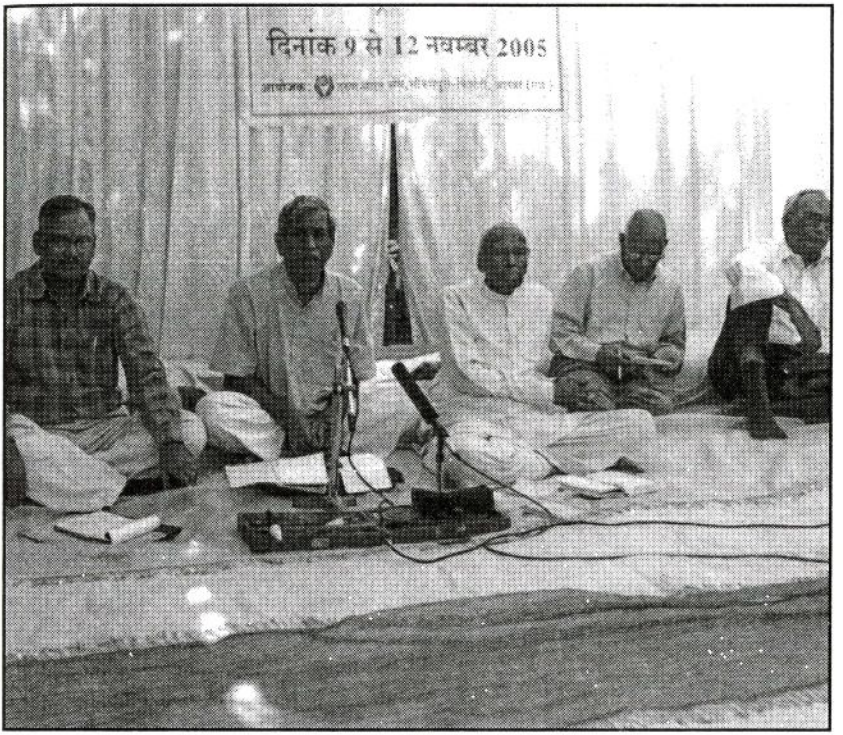

पिछले पन्नों में दर्ज तर्क व तथ्य पिछली एक शताब्दी के दौरान भारत के सरकारी तंत्र,जलापूर्ति ढांचे की स्थिति, परंपरागत जल प्रबंधन के अनुभव एवम् वर्तमान विश्व परिदृश्य पर आधारित हैं। ये तथ्य 'नदी जोड़ परियोजना' के क्रियान्वयन को सिरे से नकारते हैं। एक समय में सिरे से नकारे जाने के बावजूद बड़े बांध आज भी बन ही रहे हैं। ये रुके नहीं, हां ! बांध निर्माण में रुकावट डालने वालों के माथे पर बांध की लागत बढ़ने का आरोप अवश्य मढ़ दिया गया है। संभवत: ठोस विकल्प प्रस्तुत नहीं किए जाने की वजह से ऐसा हो रहा है। नदी जोड़ का विकल्प सामने नहीं रखने पर नदी जोड़ के विरोधियों के माथे भी यह कलंक लगया जा सकता है। अत: नदी जोड़ के विकल्प पर चर्चा जरूरी है ।

विकल्प

नदी जोड़ परियोजना मुख्यतया बाढ़, सुखाड़, ऊर्जा की कमी, सड़कों पर परिवहन के दबाव, ईंधन से प्रदूषण, बेरोजगारी तथा ईंधन आयात की मजबूरी के निदान के रूप में प्रस्तुत की गई है। राष्ट्रीय एकता में मजबूती भी इसका एक लाभ बताया गया है। इससे तो किसी को इंकार नहीं होगा... सरकार को भी नहीं कि नदी जोड़ के विकल्प प्रस्तुत करने का मतलब है, ऐसे विकल्प प्रस्तुत करना जो नदी जोड़ की तुलना में कम हानिप्रद, ज्यादा लाभकारी तथा ज्यादा टिकाऊ हों। सबसे बड़ी बात यह कि विकल्प ऐसे हों, जो सरकार व समाज पर बोझ की तरह न साबित हों; उनकी व्यवस्था स्वावलंबी हो। हमें सरकार के सामने ऐसे विकल्प रखने की जरूरत है, जिनके परिणामों को लेकर कोई शक या आशंका नहीं हो। जिस तरह नदी जोड़ में प्रस्तावित भौतिक ढांचों व कार्य व्यवस्था को लेकर पीछे का प्रमाणिक अनुभव हमने प्रस्तुत किया, वैसा ही ठोस प्रमाण विकल्प को लेकर भी होना चाहिए। अच्छा होगा कि नदी जोड़ परियोजना को जिन समस्याओं के निदान के रूप में प्रस्तुत किया गया है, उन्हीं समस्याओं को आधार बनाकर विकल्प सामने रखे जाएं।

हम जानते हैं कि किसी भी समस्या का निदान उस समस्या के मूल कारण के ज्ञान में स्वत: निहित होता है। विकल्प पर विचार करते वक्त हमें ध्यान रखना होगा कि क्या प्रस्तुत विकल्प उक्त समस्या के मूल कारणों का निदान करता है। यदि नहीं, तो वह सर्वश्रेष्ठ हल नहीं हो सकता। हरित क्रांति के औजार और कार्यक्रम कभी भारत की आबादी को अन्न सुरक्षा मुहैया कराने का तात्कालिक मार्ग था; लेकिन वह सतत् व टिकाऊ मार्ग नहीं है। हरित क्रांति ने आधी शताब्दी तक तो देश के गोदाम अनाज से भर दिए, लेकिन अब वह आगे का हल नहीं है। हाथ कंगन को आरसी क्या...। हमारी सरकारें अरसे से कहती रही हैं कि देश के गोदामों में अनाज भरा पड़ा है; भारत खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर

हमारी सरकारें अरसे से कहती रही हैं कि देश के गोदामों में अनाज भरा पड़ा है; भारत खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो गया है। मई, 2006 आते-आते सरकार चीनी, गेहूँ, दाल से लेकर फल और सब्जी तक के आयात पर मजबूर नजर आयी। ये क्या हुआ?

हो गया है। मई, 2006 आते-आते सरकार चीनी, गेहूँ, दाल से लेकर फल और सब्जी तक के आयात पर मजबूर नजर आयी। ये क्या हुआ? मसला भले ही बाजारू दांव-पेच से जुड़ा हुआ हो, एक फसल में सारे दावे धराशायी तो हो ही गये। मात्रा ही नहीं, गुणवत्ता का संकट भी आज देश के सामने है। अति दोहन ने पानी और मिट्टी की गुणवत्ता लील ली है। परिणामस्वरूप कृषि उत्पादों में पौष्टिक तत्त्वों की मात्रा तथा स्वाद में गिरावट आई है। इस गिरावट का असर उपभोक्ताओं की सेहत पर दिखने लगा है। यह अभी चेतावनी है। अभी उत्पादन की गुणवत्ता, सेहत, मिट्टी व पानी ही जा रहे हैं... अब उत्पादन की मात्रा भी जाएगी। स्पष्ट है कि हरित क्रांति स्थाई मार्ग नहीं बन सकती। अत: विकल्प सुझाते वक्त हमें जरूरत के क्षेत्र में तत्काल् जरूरत के अनुरूप कदम सीमा और टिकाऊ निदान का चुनाव करना होगा।

रोज़गार : हम जानते हैं कि नदी जोड़ परियोजना के तहत् दो बड़े ढांचागत निर्माण प्रस्तावित हैं : बांध और नहरें। अब देखें कि क्या इन दोनों के निर्माण में मशीनी एवम् मानव रोज़गार का कोई अनुपात सुनिश्चित किया गया है या नहीं।

उल्लेखनीय है कि नदी जोड़ परियोजना में सरकार अपना पैसा नहीं लगाने जा रही। प्रस्ताव के वक्त सरकार की मंशा स्पष्ट थी, वह इसे बनाने और चलाने के लिए निजी क्षेत्र को आमंत्रित करेगी। यह प्रस्ताव चाहे राष्ट्रीय निजी क्षेत्र के लिए खोला जाए या अंतर्राष्ट्रीय निजी क्षेत्र के लिए.... निजी क्षेत्र की प्रथम प्राथमिकता लाभ ही होती है। आर्थिक लाभ की दृष्टि से मशीनें उनकी प्राथमिकता बनेंगी ही। यूं भी ऐसे बड़े ढांचागत निर्माण को यथाशीघ्र पूरा करने का दबाव होता है। ऐसे में मशीनों का अधिकतम प्रयोग स्वाभाविक है। इस स्थिति में 100 हजार करोड़ खर्च करने के बावजूद सरकार कोई सतत् मानव रोजगार खड़ा कर सकेगी... असंभव है। इसके विपरीत नदी जोड़ों के परिणामस्वरूप बाढ़-सुखाड़ और डूब के जो नए शिकार बनेंगे, उन क्षेत्रों की आबादी का रोजगार इससे छिनेगा ही।

यूं भी नदी जोड़ परियोजना के काम किसी क्षेत्र के लिए स्थाई रोजगार का साधन बनेंगे, ऐसा नहीं दिखता। नहरें किसी भी इलाके को 50 बरस से अधिक समृद्ध नहीं कर सकतीं। 50 वर्ष बाद नहरी क्षेत्रों में ज़मीन बेकार होने के बीकानेर समेत कितने ही उदाहरण देश में मौजूद हैं। अत: नहरें स्थाई रोजगार का साधन बनती नहीं दिखती।

स्थाई रोजगार देने और ग्रामीण कामकाज को सुचारु बनाने हेतु जरूरी बुनियादी ढांचागत व्यवस्था तैयार करनी ही होगी।

स्पष्ट है कि नदी जोड़ परियोजना रोज़गार देगी नहीं, बल्कि छीन लेगी। यह कितने ही खेत मालिकों को मज़दूर में तब्दील कर देगी। नदियां जोड़ने के प्रस्तावित मार्ग ग्रामीण क्षेत्र ही हैं। यह परियोजना भी ग्रामीण क्षेत्र को ही रोजगार देने का दावा करती है। अब यदि 'नदी जोड़' नहीं तो भारत के गांवों को रोज़गार के ज्यादा और टिकाऊ अवसर मुहैया कराने के विकल्प क्या हों ? विकल्प तलाशने के लिए आइए पहले जानें कि गांवों में बेरोजगारी व पलायन क्यों है ?

जरा अतीत पर नजर डालें, तो स्पष्ट होता है कि गांवों की आर्थिकी अरसे से खेती और कारीगरी पर निर्भर करती थी। स्थानीय संसाधन में जो कुछ उपलब्ध था, वही गांव में आय का भी साधन था और उपभोग का भी। जब तक ऐसा था,तब तक नकदी के चलन के बावजूद हमारे यहां 'बार्टर पद्धति' घोषित-अघोषित तौर पर जिंदा रही। जब उपयोग और उपभोग के बाहरी साधन गांवों में पहुंचे तो बिना नक़दी के जीवन चलना मुश्किल हो गया। साल भर नक़दी की जरूरत रहने लगी। इस बीच खेती में भी उर्वरक, उन्नत बीज, ट्रेक्टरों, ट्यूबवैल आदि का प्रयोग बढ़ा। खेती भी साल भर नकदी मांगने लगी। कारीगरी के काम में फिनिशिंग और नए माल की होड़ बढ़ी । तद्नुसार बाजार पर कारीगर की निर्भरता भी बढ़ी। उसने भी नकद बेचना शुरू किया। परिणामस्वरूप नकदी जरूरी हो गई। खेती और देसी कारीगरी में लागत बढ़ने का नतीजा यह हुआ कि देसी कारीगरों ने आधुनिक मशीनी बाजार के आगे घुटने टेक दिए। उन्हें आजीविका के लिए बाहर जाना पड़ा। अब देखिए, उत्तरांचल प्राकृतिक संसाधनों से मालामाल है। रामबांस और बेंत की कारीगरी भी खूब है। मवेशी और औषधीय वनस्पति की कमी नहीं, फिर भी वहां बेरोजगारी है। रोज़गार के लिए पलायन है। क्यों? एक सर्वमान्य सिद्धान्त है-''कमाता वही है, जो बेचना जानता है।'' गांवों की पकड़ में गांवों के उत्पाद की बिक्री का देशव्यापी ढांचा न होने के कारण छोटा किसान खेती से कुछ कमाने की स्थिति में नहीं है। आधुनिक खेती के नाम पर खेती की लागत इतनी बढ़ गई है कि हर साल बिना अतिरिक्त निवेश किए अब खेती लाभ नहीं देती। इस बीच आबादी व एकल परिवारों में वृद्धि होने से जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हो गए हैं। कृषि एक अकेले आदमी का काम नहीं होता। इसके लिए पूरे परिवार को लगना पड़ता है। तभी इससे कुछ निकलता है। इन सारी स्थितियों

ने मिलकर काफी बड़ी संख्या में हमारे खेतिहरों को खेती से विमुख किया है। अब वे निवेश करके खेती करने की अपेक्षा नौकरी-मजदूरी करना पसंद करते हैं।

अब इतने सारे शिक्षित-अशिक्षित, तक़नीकी-गैर तकनीकी हाथों के लिए रोजगार कहां से आए? स्पष्ट है कि नकदीकरण, देसी कारीगरी उत्पाद की बढ़ती लागत, मशीनी उत्पाद की तुलना में सुघड़ता की कमी, स्थानीय संसाधनों से प्राप्त उत्पाद की बिक्री और गांव की जरूरत के सामान की स्थानीय स्तर पर उपलब्धता हेतु ढांचागत व्यवस्था की अनुपलब्धता, कृषि में बढ़ती लागत और बिक्री मूल्य के बीच घटता अंतर तथा बढ़ती आबादी ग्रामीण बेरोजगारी का मुख्य कारण है। ग्रामीण विद्यालयों/महाविद्यालयों में सहज प्रवेश तथा उत्तीर्ण होने की आसान स्थितियों ने देश में डिग्रीधारियों की फौज तो बढ़ाई, लेकिन उन्हें रोजगार पाने योग्य नहीं बनाया। नतीजा यह कि डिग्री के अनुरूप नौकरी उन्हें मिलती नहीं और अशिक्षित स्तर के मोटे.....मेहनत के काम करने का संकोच उन्हें बेरोजगार बना कर रखता है। इन सभी स्थितियों को दूर करना आवश्यक है। इनके मद्देनजर बेरोजगारी और पलायन का मुकाबला करने के लिए निम्न सुझाव प्रस्तावित हैं:

1. कृषि लागत में कमी का प्रयास हो। जल की ग्रामीण-स्वावलंबी व्यवस्था, देसी बीज तथा जैविक कृषि को अपनाकर ऐसा किया जा सकता है।

2. ग्रामीणों को उनकी जरूरत का बाहरी सामान उचित दर पर मुहैया हो सके तथा स्थानीय उत्पाद की उचित दर पर बिक्री हो.... इसके लिए सरकार गांवों में ग्रामीण हाट तथा मंडियों का अनुशासित तथा व्यापक ढांचा खड़ा करे। इसके लिए हाट/मंडियों में अनुसूचित वस्तुओं की खरीद-बिक्री का प्रावधान हो। कंपनी उत्पादों की बिक्री की सूची बनाते समय ध्यान रहे कि उनसे स्थानीय हित न टकराते हों।

3. स्थानीय कच्चे माल से तैयार उत्पादों को संरक्षित करने के प्रयास हों। स्थानीय कारीगरों को सर्वश्रेष्ठ स्तर की प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध हो।

4. प्रतियोगिता करने वाले मशीनी उत्पादों की तुलना में स्थानीय देसी उत्पादों की बिक्री सुनिश्चित करने की व्यवस्था बने।

5. औद्योगिक क्षेत्रों का निर्धारण करते वक्त तथा औद्योगिक ढांचा बनाते वक्त यह ध्यान रखा जाए कि ऐसे उद्योगों को प्राथमिकता दी जाए, जिनका आधार स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कच्चा माल तथा मानव शक्ति हो।

6. नियोजित परिवार की संकल्पना को व्यवहार में उतारने के जमीनी तथा व्यापक प्रयास हों।

7. डिप्लोमा/डिग्री प्राप्त करना कठिन बनाया जाए। माध्यमिक शिक्षा के बाद ही भविष्य का मार्ग सुनिश्चित हो, ऐसी व्यवस्था बने। कॉलेजों में व्यर्थ की भीड़ बढ़ाने की बजाय अधिकतर नौकरियों के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता स्कूली शिक्षा ही हो। अति विशिष्ट योग्यता अथवा लक्ष्य वाले विद्यार्थियों को ही कालेज स्तर पर प्रवेश मिले। शेष की दशा-दिशा स्कूली स्तर पर तय करने का अवसर हो। उम्र और क्षेत्र विशेष के अनुभव के लिहाज से स्कूली शिक्षा के बाद नौकरी हेतु चयनित युवाओं को अगले कुछ वर्ष प्रशिक्षणार्थी के रूप में विशिष्ट योग्यता हासिल करने का मौका हो। इससे अधिक उम्र तक भविष्य के प्रति अनिश्चितता तथा भटकाव कम होगा।

8. महाविद्यालयों को सामान्य डिग्री बांटने की बजाय रोजगार के नए उभरते क्षेत्रों हेतु आवश्यक विशिष्ट शिक्षा केंद्रों के रूप में विकसित किया जाए।

9. स्थानीय समुदाय के लिए अति टिकाऊ लाभ की स्थिति में ही कृषि भूमि के गैर कृषि उपयोग की अनुमति दी जाए। किसी भी रोजगारपरक कार्य में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध मानव संसाधन को प्राथमिकता देने का नीतिगत प्रावधान हो। सूचना तकनीक संभावनाओं का बड़ा क्षेत्र है। सरकार को चाहिए कि वह भारतीय ज्ञानवानों को 'आउट सोर्सिंग' के विदेशी आर्डर हथियाने के लिए प्रोत्साहित करे, लेकिन भारतीय दफ्तरों में कम्प्यूटरीकरण को सिर्फ वहीं बढ़ावा दे, जहां अति आवश्यक हो। मेरा मानना है कि गांवों की कृषि, व्यापार, शिक्षा और स्वास्थ्य का बुनियादी,

गांवों की कृषि, व्यापार, शिक्षा और स्वास्थ्य का बुनियादी, स्वावलंबी और उत्कृष्ट ढांचा मुहैया कराकर हम पलायन और बेरोजगारी दोनों पर लगाम लगा सकते हैं।

स्वावलंबी और उत्कृष्ट ढांचा मुहैया कराकर हम पलायन और बेरोजगारी दोनों पर लगाम लगा सकते हैं। '' ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना'' ने जिस प्रकार काम के प्राथमिकता क्षेत्रों को चुना है तथा इस योजना के तहत् आंवटित राशि व काम को ठेके अथवा मशीन से कराने का प्रतिबंध लगाया है; वह सराहनीय है। ईमानदारी से लागू हो सके तो यह सही मार्ग है।

10. आज हालात यह है कि हमारे गांव कस्बों में बदल रहे हैं। उनकी जीवन-जरूरतों में बाजारू उत्पाद तेजी से शामिल हो रहे हैं। गांव ने अपनी जरूरतों में शहरी उत्पादों को तो शामिल कर लिया, लेकिन जरूरतें बढ़ने से बढ़े खर्च की पूर्ति के लिए कमाने का साधन गांवों में अभी भी नहीं बन सका। समस्या यह है कि या तो शहरीकरण रुके या फिर गांव में ही शहर की आय का साधन बने। गांवों की कृषि भूमि पर आजकल बाहरी हमला तेज है। उसे मुंह-मांगे दाम पर खरीदकर बाहरी लोग किसान को खेती से बाहर कर रहे हैं। एकदम मिला पैसा संभालना मुश्किल हो रहा है। खेती बेचने वाले ज्यादातर लोगों के हाथों में कुछ समय बाद बेरोजगारी व बर्बादी ही हाथ लगती है। इस पर अंकुश लगाकर खेती जैसे टिकाऊ संसाधन की महत्ता भूलते समाज को जागरूक करना होगा, ताकि वह अपनी एक इंच भूमि बाहरी व्यक्ति को तथा गैर कृषि प्रयोजन हेतु न बेचे।

केन्द्र सरकार ने 'रोजगार कार्यालयों' के नाम पर एक 'सफेद हाथी' पाल रखा है। सरकार इस सफेद हाथी को ग्रामीण रोजगार के भिन्न पहलुओं पर क्षेत्र में जाकर कार्य करने हेतु सक्रिय करे, ताकि समाज व सरकार के बीच तालमेल की भूमिका बने। कामकाज का आधारभूत ढांचा तैयार करने के क्षेत्र में निवेश होने से आगे रोजगार के स्थाई साधन स्वत: बन जायेंगे। विकेन्द्रित सामुदायिक जल प्रबंधन इसका एक अच्छा माध्यम बन सकता है । मछली समेत अन्न-जल उत्पाद तत्काल रोजगार में योगदान दे

कामकाज का आधारभूत ढांचा तैयार करने के क्षेत्र में निवेश होने से आगे रोजगार के स्थाई साधन स्वत: बन जायेंगे। विकेन्द्रित सामुदायिक जल प्रबंधन इसका एक अच्छा माध्यम बन सकता है ।

सकते हैं। इसके तहत् निर्मित पानी के परंपरागत ढांचे और उनसे बिजली उत्पादन की संभावनाएं कृषि एवम् अन्य व्यावसायिक रोजगार खड़ा करने में खास भूमिका अदा कर सकती हैं। सोचें ! कि क्या रोजगार की दृष्टि से उक्त सुझाव 'नदी जोड़' परियोजना का बेहतर विकल्प नहीं है?

बाढ़ का निदान : नदी जोड़ परियोजना के मुख्य लाभों में 'बाढ़ नियंत्रण' को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया है। जरा सोचें कि क्या 'नदी जोड़ परियोजना'..... बाढ़ और उसके दुष्प्रभावों के मूल कारणों को नियंत्रित करने में सफल होगी? इसके लिए आइए पहले याद करें कि बाढ़ व उसके दुष्प्रभावों के बढ़ाने वाले मूल कारण क्या हैं?

1. सामान्यतया नदी के मूल स्रोत तथा तट के आस-पास का भूगोल यदि समतल नहीं है, तो बारिश का ज्यादातर पानी उन स्रोतों में रुक जाता है। एक तरह से असमतल भूमि जलाशय का काम करती है। भिन्न कारणों से कई जगह ऐसे स्थान आज 'बस्ती निर्माण' तथा 'डंप एरिया' की चपेट में हैं। परिणामस्वरूप बारिश का समस्त जल जब नदी में आने लगता है, इससे नदी में पानी का बढ़ना स्वाभाविक है। सो बाढ़ तो और तेजी से आएगी ही। नदी तट व स्रोत के आस-पास छोटे जलाशयों का निर्माण कर इसे नियंत्रित किया जा सकता है।

2. नदी के तलछट में गाद बढ़ने से नदी अपना मार्ग बदल लेती है। कहीं-कहीं तो नदी के तट में ही बस्तियाँ बस गई हैं। जब नदी मार्ग बदलेगी तो ये सभी आबादी उसकी चपेट में आएगी ही।

   नदियों में गाद जमाव का एक मुख्य कारण भूमि कटाव है। लगातार वृक्षों के कटने से भू-कटान भी बढ़ा है। बड़े बांधों ने भी गाद जमाव में अहम भूमिका निभाई है। वर्षा एवम् भूजल में आई गिरावट से मिट्टी की सतही नमी में जो कमी आती है; उससे मिट्टी को बांधकर रखने वाली वनस्पतियां नष्ट हो जाती हैं। शुष्क सतह से मिट्टी कटान की संभावना बढ़ेगी ही। गाद जमाव का दुष्प्रभाव यह है कि अब बाढ़ पहले की तुलना में ज्यादा दिन ठहरने लगी है। इसका निदान क्या है?

(क) अत: गाद जमाव रोकने के लिए नदी तट व आस-पास सघन वृक्षारोपण तथा जलाशयों का निर्माण उपयोगी कदम होगा।

(ख) नदी क्षेत्र में बसावट नियंत्रित हो।

(ग) नदी के आस-पास प्राकृतिक तौर पर निर्मित असमतल भूमि के समतलीकरण को भी नियंत्रित किया जाए।

3. कुछ हिमालयी नदियों में हिमनद (ग्लेशियर) पिघलने की रफ्तार में आई तेजी से जहां एक ओर बाढ़ की घटनाएं बढ़ी हैं; वहीं नदी स्रोत पीछे खिसकने से शेष दिनों में नदी जल में कमी का संकट भी बढ़ा है। ग्लेशियरों के पिघलने में तेजी का कारण इन क्षेत्रों में बढ़ता मानव दखल, प्रदूषण तथा वैश्विक तापमान में वृद्धि बताया जा रहा है। दुनिया के सभी ग्लेशियरों के पिघलने की रफ्तार इस बीच बढ़ी है, लेकिन भारत में सर्वाधिक तेजी गंगोत्री ग्लेशियर में आई है। गंगोत्री-गोमुख में जंगलों के कटान तथा उत्तरकाशी भूकंप के बाद चमकती टिन की छतों ने भी इस तेजी में योगदान दिया है। इन कारणों को नियंत्रित करने हेतु कारगर कदम उठाने होंगे।

4. शहरी क्षेत्र में बाढ़ के भिन्न कारण हैं। मुंबई में एक ही दिन की बारिश ने तबाही मचा दी। दरअसल शहरी क्षेत्रों में पानी निकासी के तमाम तंत्र के अवरुद्ध होने से बाढ़ ज्यादा भयंकर रूप धारण कर लेती है। सीवेज, खुले नालों तथा जमीन के भीतर भरा प्लास्टिक कचरा धरती के ऊपर-नीचे पानी का प्रवाह रोकता है। छोटे-छोटे जलाशयों के न रहने से बहता पानी व उसके प्रवाह दोनों में तेजी आई है। प्लास्टिक कचरे को नियंत्रित कर तथा शहरी सफाई व शेष कचरा निपटान व्यवस्था को सुदृढ़ कर हम शहरी बाढ़ को भी नियंत्रित कर सकते हैं।

5. बाढ़ आए ही नहीं... ऐसी व्यवस्था करना न सिर्फ अप्राकृतिक है, बल्कि असंभव भी। बाढ़ नदी व आस-पास के प्रदूषण व गंदगी को साफ करती है। बाढ़ से ही नदियां साफ रहती हैं। ''बहता पानी निर्मला'' कहा गया है। बड़े बांध तो पानी के प्रवाह को रोकते हैं। प्रत्येक बड़े बांध के बाद नदी अधिक गंदी दिखाई देती है। बांध से कभी भी बिना सूचना छोड़ा गया पानी बाढ़ के

खतरे बढ़ाता है। अत: बांध कभी भी बाढ़ नियंत्रण का माध्यम नहीं बन सकते हैं। नदी तट छोटे-छोटे जलाशयों के निर्माण, वनस्पति वृक्षारोपण के दोनों और गाद नियंत्रण, शहरी कचरा प्रबंधन आदि के जरिए हम बाढ़ और उसकी तीव्रता से उपजी समस्या का निदान कर सकते हैं।

सूखा : बाढ़ और सुखाड़ के मूल कारणों में काफी समानता होती है। वैश्विक तापमान में वृद्धि, पेड़ों का कटना, जमीन का समतलीकरण होने से प्राकृतिक जलाशयों का नष्ट होना, जल संरक्षण के पारंपरिक ढांचे की उपेक्षा और अधिकाधिक दोहन से भूजल स्तर में गिरावट, वर्षा में कमी अथवा एक साथ काफी वर्षा और फिर अधिक सूखे दिनों के कारण सूखे की स्थिति बनती है। इसके निदान हेतु निम्न उपाय प्रस्तुत हैं:

1. सघन एवम् प्रकृति अनुकूल वृक्षारोपण।

2. वन संरक्षण।

3. प्राकृतिक जलाशयों का सरंक्षण।

4. परंपरागत विकेन्द्रित सामुदायिक जल प्रबंधन को बढ़ावा।

5. वैश्विक तापमान में वृद्धि के कारकों पर रोक।

6. कृषि तथा उद्योग में अधिकाधिक जल दोहन को नियंत्रित करना। कृषि में उर्वरकों से मिट्टी कणों के टूटने की प्रक्रिया तेज होती है। ऊपरी सतह में नमी बरकरार रखने के सहायक कण नष्ट होते हैं। इससे खेती में ज्यादा पानी लगता है। देसी खाद व तौर-तरीकों का इस्तेमाल कर खेत में नमी को रोका जा सकता है। ऐसा होने पर खेती में पानी की खपत नियंत्रित होगी। साथ ही कम पानी/वर्षा होने पर भी अकाल की स्थिति नहीं निर्मित होगी।

7. नहरी क्षेत्रों में जरूरत के मुताबिक पानी देने की बजाय खेतों में खूब पानी के इस्तेमाल की प्रवृति दिखाई देती है। किसानों के समक्ष इसके वैज्ञानिक पक्ष रखने की जरूरत है। किस मौसमी परिस्थिति में किस खेती, किस भूगोल और किस बीज को कितना पानी देने की आवश्यकता है? उन्हें इस बारे में सुशिक्षित किया जाना चाहिए।

8. उद्योग जितना स्वच्छ जल धरती को लौटाना सुनिश्चित करें, उन्हें केवल उतने पानी का उपयोग करने की छूट हो। इसकी निगरानी में ईमानदारी होनी चाहिए।

9. धरती के भीतर प्लास्टिक व अन्य ऐसा कचरा जाने से भूजल का प्रवाह अवरुद्ध होता है। इससे एक क्षेत्र दलदल और बाढ़ का शिकार बनता है, तो प्रवाह के नीचे के क्षेत्रों में सूखे की स्थिति बनती है ।

10. नदियों के प्रवाह को बाधित तथा प्रदूषित करने की गतिविधियों पर रोक लगे। सरकार भी पशुधन आधारित जैविक खेती को ही लोकप्रिय बनाने को प्राथमिकता दे।

नदियों के प्रवाह को बाधित तथा प्रदूषित करने की गतिविधियों पर रोक लगे।

11. पानी की मांग तथा आपूर्ति में संतुलन जरूरी है। शहरों में सरकार, संस्थागत तथा व्यक्तिगत स्तर पर वर्षा जल संचयन अनिवार्य रूप से लागू करने के लिए एक कारगर रणनीति पर काम हो। शहरों में पानी की मांग से ज्यादा पानी की बर्बादी है। पाइप लाइनों में रिसाव की समस्या तो है ही, आम जीवन में भी पानी की बर्बादी है। इसे नियंत्रित कर ही शहरी पेयजल संकट सुलझेगा। शहर अपनी जरूरत के पानी के लिए स्वावलंबी बन सकते हैं, बशर्ते वे स्थानीय जल संसाधनों को समृद्ध करने के प्रयास सभी स्तर पर शुरू करें।

12. पानी में वितरण की असमानता समाप्त हो। इससे 'पेयजल में सूखा' से निपटने में मदद मिलेगी।

13. पानी लाभ कमाने की वस्तु न बने। इसके बाजारीकरण पर पूर्णतया प्रतिबंध हो, तो भूजल दोहन की अति से संभवत: हम बच सकें।

14. गांवों में दोहन रोकने के लिए गांव की सहमति से क्षेत्रवार भूजल स्तर का सीमांकन सुनिश्चित हो। साधारणतया उससे नीचे स्तर पर कुआं खोदने या पानी निकालने की अनुमति न हो। सिर्फ अकाल जैसी विषम स्थिति में ही उससे नीचे जाने की अनुमति हो।

15. कुल मिलाकर यदि सरकार सचमुच बाढ़-सुखाड़ से निपटना चाहती है, तो जल-जंगल-जमीन की समृद्धि हेतु वह समाज को साथ ले और समाज के

परंपरागत और सदियों के अनुभवों पर जांचे-परखे तरीकों को अपनाएं। सबसे बड़ी बात यह है कि हमारे परंपरागत तरीके लाभ ही देते हैं, नुकसान नहीं। इनके लिए किसी बाहरी विशेषज्ञ की जरूरत नहीं होती। इनमें मशीनें नहीं लगतीं। अत: ज्यादा हाथों को रोजगार मिलता है। परावलंबन नहीं होता। निर्माण व रखरखाव दोनों स्थानीय समुदाय की पकड़ में होता है। इसके लिए सरकार को कहीं से कर्ज लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। हां! इतना अवश्य है यह ढांचा पानी की एवज में सरकार को सीधे-सीधे टैक्स तो नहीं देगा, लेकिन उपज, आय और रोजगार में समृद्धि से अप्रत्यक्ष रूप से सरकार लाभ में ही रहेगी। इसलिए बाढ़-सुखाड़ और रोजगार का सर्वश्रेष्ठ विकल्प विकेन्द्रीकृत सामुदायिक सामलात देह प्रबंधन ही है । यह पहाड़ की समस्या का हल भी है और मैदान व मरुस्थल का भी। इसे अपनाकर इंग्लैण्ड भी सुखी हो सकता है और जापान भी । इसकी सर्वश्रेष्ठता को प्रमाणित करते अनेकानेक उदाहरण देश में मौजूद हैं। इनमें से चंद उदाहरण निम्नलिखित हैं :

यह ढांचा पानी की एवज में सरकार को सीधे-सीधे टैक्स तो नहीं देगा, लेकिन उपज, आय और रोजगार में समृद्धि से अप्रत्यक्ष रूप से सरकार लाभ में ही रहेगी।

पुनर्जीवित नदी अरवरी

राजस्थान के जिला अलवर में बहने वाली एक छोटी सी नदी है – अरवरी। अरवरी के आस-पास का इलाका कभी 'डार्क जोन' घोषित हो चुका था। अरवरी पहले मौसमी नदी ही थी; 1984 आते-आते तो यह सूख ही गई। बारिश की बूंदें आते-जाते इसकी त्वचा अवश्य भिगो जाती थी। इसी बीच तरुण भारत संघ की पहल पर स्थानीय गांवों ने एक साथ मिलकर अरवरी नदी क्षेत्र में सैकड़ों छोटे-बड़े तालाब व एनीकट का निर्माण किया; जंगल संरक्षित किया। अब अकाल में भी यहां पानी रहता है। अरवरी जी उठी है। आज अरवरी बारहमासी धारा है। यह बारहमासी बनी रहे, इसके लिए पानी का अनुशासित उपयोग जरूरी है। अरवरी के 70 गांवों ने अनुशासन कायम करने के लिए 'अरवरी संसद' का गठन किया है। सभी गांव 'अरवरी संसद' के नियम-कायदों की पालना करते हैं। इसी से अरवरी नदी और इसके गांव आज देश-दुनिया के लिए आकर्षक बने हैं। इसी से अरवरी जिंदा है। यही वजह है कि अनुशासित

उपयोग और कम पानी वाली फसलों का चक्र तथा जैविक कृषि अपनाने के कारण भांवता-कोल्याला, हमीरपुर, सांवत्सर जैसे ग्रामों में समृद्धि और प्रेमपूर्ण वातावरण है। तरुण भारत संघ ने लोगों को उनका ज्ञान याद दिलाया, कुछ मदद भी की, किंतु किया लोगों ने ही। लोगों का अपना ज्ञान फल-फूल रहा है। जल, जंगल, जमीन और जीवन....सभी के चेहरों पर खुशहाली है।

पानी से कैसे जीवन में समृद्धि व समाज में एकता खड़ी होती है; तरुण भारत संघ का कार्यक्षेत्र इसका अनुपम प्रमाण है। इसके उदाहरण सिर्फ यहीं नहीं.....बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर, शेखावाटी, भरतपुर, करौली, सवाईमाधोपुर समेत राजस्थान के सभी इलाकों में देखे जा सकते हैं। यह रास्ता सिर्फ राजस्थान का सूखा दूर करने में सक्षम हो... ऐसा नहीं है; आंध्र-प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, बिहार, असम, हरियाणा, उत्तरांचल, जम्मू-कश्मीर... सभी जगह इसकी उपयोगिता है। आंध्र प्रदेश में नलगोण्डा के 400 गांव इसका सुंदर उदाहरण हैं। गुजरात के कच्छ क्षेत्र में पानी की छोटी-छोटी जल संरचनाओं ने जीवन सरल कर दिया है। गन्ना, सोयाबीन, अंगूर, संतरा, केला, टमाटर, प्याज की अति जल दोहन वाली खेती करने वाला प्रदेश महाराष्ट्र अब सीख रहा है। वहां भी छोटी जल संरचनाओं के जरिए खेती शहर व उद्योग बचाने का काम शुरू हो चुका है। वर्षा जल संचयन के लिए दिल्ली-जयपुर सभी में थोड़ी चेतना आई है। चावल बोने वाला नगालैंड अपना फसल चक्र बदलकर भी अधिक आय कमा रहा है। मध्यप्रदेश का समाज भी जल संरक्षण के छोटे ढांचों को बचाने की तैयारी में लग रहा है।...

विकेन्द्रीकृत सामुदायिक प्रबंधन का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसके लिए न बाहरी विशेषज्ञों की फौज लाने की जरूरत है और न ही बड़े कर्ज की। छोटी जल संरचनाएं उस काम व क्षेत्र के लिए भी कारगर हैं, जिन्हें ज्यादा पानी की जरूरत है । हां ! सरकार को चाहिए कि वह देश में जल-जंगल के विकेन्द्रीकृत सामुदायिक प्रबंधन ढांचे को लागू करते वक्त निम्न सिद्धान्तों की पालना अवश्य करे :

1. ऐसे किसी भी कार्य में स्थानीय समाज को जोड़ना अनिवार्य है। जब तक स्थानीय समुदाय अपनी इच्छा जाहिर न करे, कोई संरचना या प्रबंधन सरकार अपने स्तर पर न करे तथा जितना जरूरी हो, उतना ही सहयोग करे। हाँ ! चेतना जगाने का काम निरंतर हो।

2. जल पर अधिकार भी स्थानीय समुदाय का ही रहना चाहिए। यदि समुदाय का प्रत्येक व्यक्ति अपनी किसी रचना का मालिक स्वयं होता है तो वह रचना सुरक्षित रहती है।

3. किसी भी कार्य को दान की शैली में न किया जाये। स्थानीय समुदाय को गहराई से यह समझाना होगा कि उस कार्य में उसका अपना हित जुड़ा है। प्रेरक संस्था या सरकार का उसमें कोई स्वार्थ नहीं है। वह तो मानवता के नाते उनके कार्य से जुड़ी है। यदि ऐसा न हुआ तो संरचना की देखरेख के प्रति लापरवाही होनी सुनिश्चित है।

4. स्थानीय समुदाय को यह अनुभव नहीं होना चाहिए कि बाहर से आई संस्था उस पर अपना ज्ञान थोप रही है। लोगों से बात इस प्रकार की जाए, ताकि उन्हें लगे कि काम उन्हीं की इच्छानुसार तथा उनके ही बताए ढंग से किया जा रहा है। बाहर वाले तो उनसे सीख ही रहे हैं। ऐसा होने से स्थानीय समुदाय में इच्छा, लगन एवं उत्साह बना रहेगा। लोगों में आत्मविश्वास जागेगा; जो उनमें उत्तरदायित्व का भाव पैदा करेगा। ऐसे जिम्मेदारों को हकदारी भी मिले, इसके कानूनी प्रावधान हों।

5. लाभार्थियों को यह अनुभव न हो कि उनसे ऐसा काम कराया जा रहा है, जो उनके करने का नहीं है । उन्हें ऐसा महसूस होना चाहिये कि वे वही काम कर रहे हैं, जो उन्हें करना चाहिए।

6. सामुदायिक जल संरक्षण का कार्य स्थानीय समुदाय की लोक परम्परा, रीति-नीति व संस्कारों के अनुसार ही होना चाहिए। हानिकारक तत्वों के निराकरण के बारे में भी उन्हें ऐसे बताया जाए कि वे खुद ही उनसे हटने का निर्णय ले लें। समाज को यह भी एहसास होना चाहिए कि जो भी कार्य हो रहा है, वह विकसित मूल्य प्रणाली के अनुसार ही हो रहा है।

7. स्वैच्छिक संस्थाएं, सरकारी - गैर सरकारी संगठन अपनी निष्ठा, लगन, नि:स्वार्थ भाव एवं समुदाय के प्रति प्रतिबद्धता का उदाहरण प्रस्तुत करें। इससे वे एक ऐसी नैतिक शक्ति का रूप ग्रहण कर सकते हैं, जिसके बिना जनकल्याण के कामों में टिका रहना कठिन होता है। ऐसे कामों में तरह-तरह के विरोध का सामना करना पड़ता है। जिसे भी अपना वर्चस्व टूटता नजर आता है, वही विरोधी बन जाता है। संस्था का नैतिक बल ही विरोध को शान्त कर सकता

है और यही लोगों को काम के पक्ष में लामबन्द करता है। वैसे भी निष्पक्षता और नैतिक बल के आग्रह के बिना न तो न्याय किया जा सकता है और न ही समतावादी समाज ही कायम हो सकता है।

8. प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग के पक्ष में सामुदायिक आम सहमति सुनिश्चित करना भी अनिवार्य शर्त है। खुशहाली आने पर व्यक्ति में स्वार्थ की भावना जोर पकड़ने लगती है। उसमें और अधिक पाने की लालसा बढ़ने लगती है। यह बहुत ही स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्ति है; लेकिन लगातार सामुदायिक सजगता व आचार संहिता के पक्ष में बनाया गया वातावरण स्वार्थ की भावनाओं को जोर पकड़ने से रोक देता है।

9. जो भी कार्य किया जाये, उसका प्रलेखन (रिकार्ड) अवश्य होना चाहिए। इससे कार्य में पारदर्शिता बनी रहेगी। इसी से विश्वास भी क़ायम होगा। समुदाय जब अपने काम के बारे में सुनेगा या पढ़ेगा तो कार्य से उसका जुड़ाव और बढ़ेगा तथा उसमें आत्मविश्वास जागेगा। स्वयं पेड़ उगाकर उसे नष्ट होते नहीं देखा जा सकता। अत: काम टिकाऊ भी रहेगा।

10. इस प्रबन्धन के साथ-साथ स्थानीय समूहों– युवा मण्डल, महिला मण्डल, पर्यावरण मित्र, ग्रामसभा आदि का गठन भी लाभप्रद रहेगा। इससे समाज जुड़ेगा और उसमें जिम्मेदारी का भाव भी जागेगा। महिलाओं की बराबर की भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। आरम्भ में मौखिक और मनोरंजक तरीकों से उनके स्वास्थ्य, खान-पान, रहन-सहन के तरीकों में लाभप्रद बदलाव लाने के प्रयास भी किए जाने चाहिए। जल प्रबन्धन पर श्री राजेन्द्र सिंह का कहना सही है - ''हम निर्माण से ही निर्माण क्यों न करें, विनाश के द्वारा निर्माण क्यों किया जाए; जबकि हमारे पास इससे अच्छा विकल्प मौजूद हों।''

दरअसल मानव सोचता है कि वह अपने तरीके से प्रकृति को चला लेगा। टाइटेनिक जहाज बनाया गया और यह माना गया कि इस जहाज को कोई समुद्र नहीं डुबो सकता। प्रकृति को इतना सरल समझना बड़ी भूल है। यह हमेशा अपनी भूमिका निभाती रहती है। वह मानव को अपने प्रति सावधान भी करती रहती है। सुनामी का कहर, उत्तरकाशी, लातूर, चीन आदि में भयंकर भूकम्प, हाल ही का कश्मीर का भूकम्प, 2000 में टिहरी का जलप्रलय, मुम्बई की 2005 की बारिश, बांध के कारण

फरक्का में भयंकर भूक्षरण, ओजोन गैस की सतह में छेद, ग्लेशियरों का पिघलना आदि जाने कितने उदाहरण हैं, जो प्राकृतिक चेतावनी के रूप में हमारे सामने हैं।

अत: हमें प्रकृति को ही सर्वश्रेष्ठ शक्ति मानने की समझदारी बरतनी चाहिए। इसी में बाढ़ और सुखाड़ का निदान निहित है। यह कोई सिर्फ किसी एक की निजी राय नहीं है। वर्ष-2000 में 'वर्ल्ड वाटर काउंसिल' तथा 'ग्लोबल वाटर पार्टनरशिप एंड बिजनेस पार्टनर्स फॉर डेवल्पमेंट'' ने विश्व जल संकट से उबरने का मार्ग जानने के लिए संगठनों को आमंत्रित किया था। उनकी चर्चा का निचोड़ भी यही निकला। इस सम्मेलन में निजीकरण का जोरदार विरोध तो हुआ, पर निम्न सिद्धान्तों पर सहमति भी बनी :

1. पानी पृथ्वी का और इस पर रहने वाले जीवों का है।
2. जहां भी संभव हो, जल का संरक्षण करना चाहिए।
3. प्रदूषित जल का शुद्धिकरण जरूरी है।
4. पानी का संरक्षण प्राकृतिक तरीकों से करना ही उचित है।
5. पानी जन सामान्य का है। सरकार को हर प्रकार से इसकी रक्षा करनी चाहिए।
6. स्थानीय समुदाय एवम् नागरिक ही पानी के अच्छे पैरोकार होते हैं।
7. जल संरक्षण में जनता को भी अपनी भागीदारी निभानी चाहिए।
8. वैश्विकरण की आर्थिक नीतियों पर चलकर पानी नहीं बच सकता।

क्या उक्त सिद्धान्तों और तथ्यों के बाद भी आप 'नदी जोड़ परियोजना' को ही बाढ़-सुखाड़ का सर्वश्रेष्ठ निदान मानते हैं ?

विद्युत : विशेषज्ञों का मानना है कि देश में बिजली की नहीं, बल्कि वितरण और प्रबंधन की समस्या है। बिजली चोरी इसका बड़ा कारण बताया गया है। हमारा विरोध पानी से बिजली बनाने को लेकर नहीं है, बल्कि उसके लिए निर्मित बड़े ढांचों से है। अत: निदान क्या है ?... यह सोचना है।

1. बिजली चोरी रोकने के लिए बिजली उत्पादन, आपूर्ति, उपभोक्ता से प्राप्त बिजली खर्च... इन तीनों के तुलनात्मक आंकड़ों पर निगाह रखी जाए।

2. दोषी कर्मचारी तथा उपभोक्ता दोनों को कड़े दंड का प्रावधान हो।

3. बिजली के उत्पादन के लिए आज देश में मुख्यत: ताप विद्युत और पनबिजली के तरीके से ऊर्जा प्राप्त की जाती है। ताप विद्युत परियोजनाओं से उत्पन्न राख के ढेर ने अब चेतावनी की घंटी बजा दी है। अत: ताप विद्युत परियोजनाएं एक सीमित स्तर तक अपनाई जाएं। पनबिजली के मामले में हमारा आग्रह है कि इसके लिए बड़े की बजाय छोटे बिजलीघरों का विकेन्द्रीकृत ढांचा बने। कम से कम ग्रामीण क्षेत्रों के लिए यह व्यावहारिक प्रस्ताव है। ग्रामीण क्षेत्र का खुलापन और भौगोलिक परिस्थितियां इसके लिए अनुकूल होती हैं। छोटे पनबिजलीघरों को छोटे-छोटे सामुदायिक स्तर पर लगाना व रखरखाव संभव है। पहाड़ी इलाकों में पनचक्की के उदाहरण आज भी मौजूद हैं। इसके अलावा महत्वपूर्ण बात यह है कि नदियां छोटे पनबिजलीघरों के दबाव को लंबे समय तक झेल सकती हैं। विशेषज्ञ कहते हैं कि पनबिजली के छोटे संयंत्रों से प्राप्त बिजली की लागत अधिक होती है। हमारा मानना है कि बड़े ताप बिजलीघरों से होने वाले प्रदूषण तथा पनबिजलीघरों के कारण गाद से लेकर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सभी नुकसानों का यदि आकलन करें, तो छोटे बिजलीघर लाभ का सौदा साबित होंगे।

चीन में 88,000 छोटे पनबिजलीघर हैं। इनकी कुल क्षमता 6929 मेगावाट है। 1980 में देहाती क्षेत्रों में कुल जितनी बिजली की खपत हुई, उसका यह एक-तिहाई है। 1980 में उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू काश्मीर, पश्चिम बंगाल एवं सिक्किम में कुछ छोटे बिजलीघर बनाये गए। 1991 के आस-पास देश के कई स्वयंसेवी संगठनों ने भी छोटे पनबिजलीघर लगाने के प्रयोग शुरू किए हैं। उत्तरांचल के चमोली जिले में जाखेश्वर शिक्षण संस्थान ने मात्र 65,000 रु. की लागत से 10 किलोवाट का एक संयन्त्र लगाया। यह सरकारी लागत से बहुत कम है। इससे पहले भी गोपेश्वर के पास टंगसा ग्राम स्वराज्य संघ ने 10 किलोवाट का एक पनबिजलीघर खूब सफलता से चलाकर दिखाया है। रुड़की विश्वविद्यालय तथा गढ़वाल विश्वविद्यालय ने भी ऐसे प्रयोग किए हैं।

कहना न होगा कि छोटे पनबिजलीघर एक सतत व स्वावलंबी इकाई बन सकते हैं; बशर्ते कि जल स्रोत स्थायी व टिकाऊ हों। इस शर्त के मद्देनजर हमें ऊर्जा

के वैकल्पिक स्रोतों का भी उपयोग करना चाहिए। परमाणु ऊर्जा उपयोग को सरकार बेताब ही दिखती है। हालांकि सरकार ने सौर ऊर्जा, बायोगैस तथा पवन ऊर्जा के गैर परंपरागत क्षेत्र के विकास के लिए एक पूरा मंत्रालय बनाया है, लेकिन भिन्न कारणों से ये स्रोत लोकप्रिय नहीं हो सके हैं। सौर ऊर्जा संयंत्रों की शुरुआती कीमत अधिक होने से ये आमजन की पकड़ से बाहर है। बायो गैस तथा पवन ऊर्जा को लेकर भी कमोबेश यही स्थिति है। सरकार इन्हें लोकप्रिय बनाने के लिए हर संभव उपाय करे। कारण कि प्रकृति ने भारत को सौर व पवन ऊर्जा का अक्षय भंडार दिया है।

इन स्रोतों के जरिए ही काफी बड़ी आबादी की जरूरत पूरी की जा सकती है। यह बात अलग है कि सभी जगह...सभी स्रोत कारगर नहीं हो सकते। अत: आस्ट्रेलियाई तकनीक के जरिए कचरे से बिजली बनाने के लिए चेन्नई-लखनऊ में लगा जरूर व्यवहार और कागज में फर्क के चलते असफलता ही नियति बनी। जिस जगह...जिस काम के लिए जो स्रोत अनुकूल हो... उसे ग्राह्य व लोकप्रिय बनाने की कोशिश होनी चाहिए। इससे बड़े बिजलीघरों के निर्माण का दबाव स्वत: कम हो जाएगा।

3. देश में बिजली की मांग कम करने के लिए कई दिशा में कदम उठाने की आवश्यकता है :

(क) बिजली के उपयोग को श्रेणीबद्ध कर श्रेणी तथा खपत के अनुसार बिजली की दरें तय की जाएं।

(ख) बिल उगाही में कोताही किसी स्तर पर बर्दाश्त न हो।

(ग) स्रोत से लेकर उपभोक्ता तक बिजली पहुंचने के मार्ग में लीकेज/चोरी की सभी संभावनाएं समाप्त की जाएं।

(घ) ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीणों की जेब तथा मीटर पठन के खर्चे को ध्यान में रखकर ही उन्हें एक तय मासिक राशि पर बिजली कनेक्शन दिए जाते हैं। सरकारों की ऐसी नेकनीयती का समाज को ख्याल रखना चाहिए। स्थिति यह है कि हमारे गांवों में आप दिन की रोशनी में भी अनायास जलते बल्ब देख सकते हैं। तय राशि होने से वे अधिक खपत

को निजी नुकसान नहीं मानते। इससे होने वाले दूरगामी नुकसान के प्रति उन्हें जागरूक करने की आवश्यकता है। उन्हें बताना होगा कि यदि यूं ही बिजली बर्बाद होती रही, तो अंतत: इसका असर उनकी जेब पर ही पड़ेगा। छोटे बिजलीघरों के सीमित उत्पादन और उत्पादन के अनुसार छोटे दायरे के लिए बिजली की उपलब्धता से उत्तरदायित्व का आभास होगा और बर्बादी घटेगी।

(ङ) वैज्ञानिकों एवम् शोधशास्त्रियों को चाहिए कि इलेक्ट्रिकल एवम् इलेक्ट्रोनिक्स उत्पादों का निर्माण करते वक्त उन्हें कम ऊर्जा खपत वाला बनाने के शोधकार्य पर विशेष ध्यान दें। साथ ही वैकल्पिक ऊर्जा पर आधारित संयंत्रों के निर्माण में लगें। हिमाचल प्रदेश में पानी उठान के लिए प्रयुक्त 'हाइड्रेम तकनीक' एक ऐसी तकनीक है, जिसमें बिना बिजली-बिना ईंधन पानी को नीचे से उठाकर ऊपर के खेतों में पहुंचाया जाता है।

देहात में एक छोटे डिब्बे में गोबर, पुराने बेकार बैटरी सेल तथा कुछेक रसायनों की मदद से 600 बल्ब जलाते देखा जा सकता है। पवन उर्जा का क्षेत्र दमदार है। छोटे सयंत्र संभव हो तो कुछ बात बने। ताज्जुब नहीं कि भारत के नौनिहालों का मस्तिष्क 'जुगाड़ टैक्नोलॉजी' की दिशा में काफी उर्वर है। यह गंभीर चर्चा का विषय है। हमारे वैज्ञानिक स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों तथा तकनीक का इस्तेमाल ऊर्जा के क्षेत्र में भी करें। यदि ऊर्जा को प्राथमिकता देते हुए सरकार इस क्षेत्र में शोध को प्रोत्साहन दे, तो देश ईंधन आयात के बड़े संकट से भी उबर सकता है।

भारत के नौनिहालों का मस्तिष्क 'जुगाड़ टैक्नोलॉजी' की दिशा में काफी उर्वर है। यह गंभीर चर्चा का विषय है।

परिवहन : सड़कों पर बढ़ते परिवहन के दबाव, वाहन प्रदूषण और ईंधन आयात का विकल्प जल परिवहन बताया जा रहा है। जल परिवहन को अपनाने में कोई विशेष बुराई तो नहीं है सिवाय इसके कि जल परिवहन से इसके मार्ग में थोड़ा-बहुत प्रदूषण बढ़ेगा... लेकिन नदी जोड़ने से पहले सरकार मौजूदा जलमार्गों पर जल परिवहन चला कर देखे। यूं सड़कों पर दबाव, वाहन प्रदूषण रोकने तथा ईंधन की मांग कम करने के

लिए निम्न उपाय प्रस्तुत हैं :

1. महानगरों में अलग साईकिल लेन बने।

2. गांवों से शहरों की ओर पलायन नियंत्रित हो।

3. सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था अधिक सुचारु तथा आरामदायक बनाने के प्रयास हों।

4. सरकारी एवम् अधिकारिक स्तर पर वाहन खर्च नियंत्रित करने की व्यवस्था हो।

5. मालवाहक और सार्वजनिक परिवहन को कम तथा निजी सवारी परिवहन को अधिक दर पर ईंधन बिक्री का प्रावधान हो।

6. कर्मचारियों के रहने के स्थान तथा कार्यालय के बीच की दूरी घटाने के लिए रणनीति तैयार की जाए। जहां संभव व उचित हो, वहाँ कार्यालय के निकट कर्मचारी आवास परिसर का व्यापक कार्यक्रम बने।

7. सरकारी वाहनों के रखरखाव पर विशेष निगरानी रखी जाए। खराब वाहन में ईंधन खपत ज्यादा होती है।

8. देश के भीतर तेल कुएं तलाशने का काम प्राथमिकता पर हो।

9. वैकल्पिक ऊर्जा चालित वाहनों को लोकप्रिय बनाने के प्रयास हों।

राष्ट्रीय एकता : नदी जोड़ परियोजना राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में सहायक होगी, परियोजना नियोजकों का ऐसा ही विचार है। नदी जोड़ नए विवाद खड़े कर समाज को तोड़ेगा। इसकी चिन्ता हम पिछले पन्नों में व्यक्त कर चुके हैं। हमारा मानना है कि यदि सरकार सचमुच राष्ट्रीय एकता के प्रति चिंतित है तो वह निम्न पहलुओं की चिंता करे :

1. जाति, धर्म व समुदाय आधारित राजनीति बंद हो।

2. आरक्षण रद्द किया जाए और आर्थिक पिछड़ेपन को आधार बनाकर संबंधित वर्ग को उनके शैक्षिक व सामाजिक उत्थान के लिए पूरी ईमानदारी व प्रतिबद्धता के साथ मदद व प्रोत्साहन का नीतिगत फैसला हो।

3. साम्प्रदायिकता फैलाने वालों के खिलाफ बगैर किसी पक्षपात के सख्त व तत्काल फैसले की व्यवस्था बने।

4. प्रत्येक दल को अपनी मर्जीनुसार शैक्षिक पाठ्यक्रमों में बदलाव की छूट न हो।

5. भिन्न क्षेत्र के लोगों को आपसी व सांस्कृतिक स्तर पर विचार-विनिमय के मंच मुहैया कराए जाएं।

6. राष्ट्रीय एकता के ढोल पीटने अथवा इसे बार-बार दोहराने से कम उम्र में एक बड़ी आबादी को जाति-धर्म-समुदाय का भेद समझ में आने लगता है। बेहतर यही है कि सरकारें इस मत पर हल्ला मचाने का काम न करें। दूर-दराज के जिन इलाकों में इस ढोल की आवाज नहीं पहुंचती, वहां अभी भी भिन्न जाति-धर्म व समुदाय के लोगों में भेद करना बाहरी लोगों के लिए मुश्किल ही है। देश में आपसी एकता व सद्भाव का माहौल वहीं बिगड़ा है, जहां राजनीति और राष्ट्रीय एकता का ढोल ज्यादा तेजी से पीटा जाता रहा है। सरकार इससे बचे।

संकट उन समस्याओं का नहीं... विचार का है। दिमागी प्रदूषण कम किए बगैर कोई भी उपाय कारगर नहीं हो सकता। भारत में एक बार बड़े पैमाने पर दिमागी स्वच्छता अभियान चलाने की जरूरत है। इसके अभाव में अच्छे उपाय भी कारगर नहीं हो पाते ।

इन सहज तरीकों से बड़े परिवर्तन स्वत: सामने आ जाएंगे। उक्त उपायों पर विचार करें, तो हम पायेंगे कि जिन समस्याओं के निदान के रूप में नदी जोड़ परियोजना को प्रस्तावित किया गया है; संकट उन समस्याओं का नहीं... विचार का है। दिमागी प्रदूषण कम किए बगैर कोई भी उपाय कारगर नहीं हो सकता। भारत में एक बार बड़े पैमाने पर दिमागी स्वच्छता अभियान चलाने की जरूरत है। इसके अभाव में अच्छे उपाय भी कारगर नहीं हो पाते । हमारे समाज को चाहिए कि वह नदी जोड़ के भिन्न पहलुओं को समझें, उसके व्यावहारिक पक्ष और अपनी स्थानीय अनुकूलताओं को सामने रखें तथा तद्नुसार नदी जोड़ परियोजना के प्रति अपनी प्रतिक्रिया से शासन को पूरी प्रतिबद्धता के साथ अवगत कराए।

केन-बेतवा अध्ययन

तरुण भारत संघ के सहयोग से किया गया प्रारम्भिक पर्यावरणीय – सामाजिक परीक्षण

यह अध्ययन श्री पी.सी. त्यागी (पूर्व अध्यक्ष, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, नई दिल्ली), श्री ओ.एन. गर्ग (पूर्व मुख्य अभियन्ता, सिंचाई विभाग, उ.प्र.), डॉ. आर.एच. सिद्दिक़ी (पूर्व प्रोफेसर - पर्यावरण अभियान्त्रिकी, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय), डॉ. जी.डी. अग्रवाल (पूर्व प्रोफेसर - पर्यावरण अभियान्त्रिकी, आई.आई.टी., कानपुर) और डॉ. साधना चौरसिया (आचार्य - पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, महात्मा गांधी ग्रामीण विश्वविद्यालय, चित्रकूट) के मार्गदर्शन में लोक विज्ञान संस्थान, देहरादून के वैज्ञानिक श्री अनिल गौतम, डॉ. रमेश सी. त्रिपाठी, आयां बिश्वास और महात्मा गांधी ग्रामीण विश्वविद्यालय, चित्रकूट के पर्यावरण विज्ञान में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त कर रहे छात्रों द्वारा किया गया।

प्रस्ताव

231 किमी लम्बे केन-बेतवा जोड़ में रुपये 4 हजार करोड़ का खर्च अनुमानित है। इसमें बेतवा नदी बेसिन में 6.45 लाख हेक्टेयर (उ.प्र. की 1.55 लाख हेक्टेयर तथा मध्य प्रदेश की 4.90 लाख हेक्टेयर) भूमि की सिंचाई व्यवस्था हो सकेगी। इस पर व्यावहारिक अध्ययन अब पूरा हो गया है।

निष्कर्ष बिन्दु

केन का ऊपरी बेसिन

- ढालू भूगोल के कारण केन और उसकी सहायक धाराओं पर छोटे बांधों के जरिए भी पनबिजली संयंत्र लगाये जा सकते हैं।
- इस क्षेत्र में बादल फटने की घटनाएं आम हैं। इससे अचानक बाढ़ का ख़तरा यहाँ पहले से ही है, प्रस्तावित बांध इसे और बढ़ाएगा। बांध बनाने की बजाय यहाँ समुचित बाढ़ प्रबन्धन प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है।
- इस बेसिन के ज्यादातर हिस्से में आज भी परम्परागत और वर्षा आधारित खेती ही है। पानी की कमी की वजह से कुल कृषि योग्य भूमि के 30% से कम हिस्से पर सिंचित खेती है। प्रस्तावित जोड़ के बाद इस आंकड़े के 42.91% होने का अनुमान बताया गया है। अनिश्चित वर्षा, उचित सिंचाई सुविधा तथा कृषि सम्बन्धी सहायक ढांचे का अभाव होने से यहाँ अभी भी सूखे प्रदेश सी खेती है। निश्चित ही उक्त अभावों की पूर्ति यहां जरूरी है। इधर नर्मदा बेसिन में हो रही गन्ना

और सोयाबीन की खेती का चलन यहाँ भी प्रभाव डालने लगा है। इससे पानी की मांग बढ़ेगी। स्थानीय बेरोजगार और बदहाल आबादी सुधारने के लिए आय बढ़ाने की गतिविधियाँ शुरू होनी चाहिए।

केन का निचला बेसिन

- प्रस्तावित बांध से स्थानीय पारिस्थितिकी पर गम्भीर प्रभाव। मछली एवं अन्य जीवों की संख्या में कमी होगी। ध्यान रहे कि अकेले बरियारपुर से यमुना व केन के मध्य क्षेत्र में ही मछलियों से करीब एक करोड़ रुपये की सालाना आय होती है।
- बांध स्थानीय उपजाऊ मिट्टी की ऊर्वरा शक्ति भी घटाएगा।
- उपलब्ध नहरी तंत्र के बावजूद यहाँ खेती के लिए पर्याप्त पानी नहीं है। अपने ऊपरी छोर पर मात्र 2500 क्यूसेक क्षमता वाली पुरानी केन नहर प्रणाली इस इलाके की कृषि जल जरूरत को पूरा करने में असमर्थ है।
- वर्तमान केन नहर प्रणाली स्वतः गहरे जल संकट से गुजर रही है। प्रस्तावित जोड़ जलापूर्ति की अनिश्चितता तथा जलाभाव को और बढ़ाएगा।

डेयोढ़न बांध क्षेत्र

- इसमें करीब 8,650 हेक्टेयर भूमि (6400 हेक्टेयर वन भूमि, 2171 हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि तथा 79 हेक्टेयर गैर-कृषि भूमि) डूब में आयेगी।
- डेयोढ़न, करयानी, पलकोहा, सुकवाहा, भोरखुआ, बसुधा और घुघरी गांव भी डूबेंगे। गांव मनियारी और पदरिया भी प्रभावित होंगे।
- डूब प्रभावित वन भूमि में पन्ना राष्ट्रीय पार्क का हिस्सा भी शामिल है। आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण टीक जैसे पेड़ों के अलावा यहाँ अत्यन्त उच्च कोटि का मिश्रित वन है।
- पन्ना टाइगर रिजर्व में दुर्लभ स्याहगोश चीता, तेंदुआ, चार सींगों वाला हिरण, भेड़िया, भालू, घड़ियाल, मगरमच्छ तथा चित्तीदार बिल्ली की नस्ल हैं। बांध से इनका पर्यावास बुरी तरह प्रभावित होगा। नदी तट पर दूर-दूर तक गाद भर जाने से वन्य जीवों का जलस्रोत तक पहुँचना मुश्किल हो जाएगा। ताजा पानी के बहाव रुक जाने के कारण घड़ियालों और मगरमच्छों के लिए प्रसिद्ध अभयारण्य भी प्रभावित होगा।
- एन.सी.ए.ई.आर. रिपोर्ट में 3250 और व्यावहारिकता रिपोर्ट में 8550 लोगों के विस्थापन का आंकड़ा दर्शाया गया है। इसमें 34.38% प्रभावित अनुसूचित

जाति के और 15.54% अनुसूचित जनजाति बताये गए हैं। वस्तुस्थिति यह है कि प्रभावित गांव घुघरी में अनुसूचित जाति का प्रतिशत 91.84 है। परियोजना ने इनके पुनर्वास के लिए अभी कोई ठोस नीति नहीं बनाई है।

- मौसमी बदलाव जल परिवर्तन से बीमारियाँ बढ़ेंगी। बांध निर्माण के दौरान विस्फोट आदि से वायु – ध्वनि प्रदूषण होगा। इससे दुर्लभ वनस्पति के नुकसान तथा आदिवासियों के पलायन का संकट खड़ा होगा।

लिंक नहर के तटीय क्षेत्र

- प्रस्तावित नहरी तंत्र की धारा डेयोढ़न बांध से उत्तर दिशा में प्रवाहित होगी। यह धारा मध्यप्रदेश में 81 कि.मी. तथा उत्तरप्रदेश सीमा क्षेत्र में 131.4 कि.मी. लम्बाई तय करेगी। बरुआ सागर में गिरने से पहले यह नहर पावरा, मगरवारा, भुसोज और बदरी संरक्षित वन क्षेत्रों से गुजरेगी। नहर करीब 2175 हेक्टेयर उपयोगी भूमि घेरेगी। इसमें 8.19 % वन भूमि, 44.65% कृषि भूमि, 13.31% बंजर भूमि, 13.34% कृषि योग्य भूमि और 20.51% गैर कृषि भूमि शामिल है।
- नहरी तंत्र साल दर साल मिट्टी की उर्वर क्षमता घटाएगी। जल निकासी तंत्र अवरुद्ध होगा। बड़े पैमाने पर कृषि भूमि में जल भराव के नए क्षेत्र बनेंगे। भू-जल स्तर नकारात्मक रूप से प्रभावित होगा। बाढ़ के खतरे बढ़ेंगे। नहरीकरण पानी की चोरी को बढ़ावा देता है। इस इलाके में भी ऐसा ही होगा। अभी यहाँ ताल-तलैया ही सिंचाई का मूल तंत्र हैं। एकबार नहरी प्रणाली इस क्षेत्र में आ गई तो परम्परागत जल-संचयन प्रणाली ध्वस्त हो जाएगी।
- नहरीकरण की वजह से कोटरा गांव के शिव मन्दिर, धनेड़ा के हनुमान मन्दिर समेत चंदेलों के जमाने की ऐतिहासिक इमारतों के सिर पर खतरे की घण्टी बजती दिखाई दे रही है।

ऊपरी बेतवा बेसिन

- बुंदेलखण्ड के दूसरे इलाकों की तुलना में यहाँ वर्षा दर अधिक है। अतः उसे जल संचयन ढांचों में संरक्षित किया जा सकता है।
- प्रस्ताव है कि रायसेन और विदिशा जिले में बेतवा नदी पर बरारी, नीमखेदा और रिचन नामक तीन बांधों में पानी रोका जाएगा। इससे माताटीला और राजघाट के जलाशयों की भण्डारण क्षमता का पूरा उपयोग नहीं हो पाएगा। इन दोनों से होने वाली पनबिजली उत्पादन में भी कमी आएगी।

- इस बेसिन की काली मिट्टी की जल ग्रहण क्षमता कम ही है। अतः अधिक सिंचाई से जल भराव की समस्या बढ़ेगी; साथ-साथ कृषि में रसायनों के उपयोग से भू-जल गुणवत्ता भी प्रभावित होगी। मिट्टी उर्वरता प्रबन्धन तथा तालाब, छोटे बांध आदि के जरिए जल संचयन प्रणाली विकसित करना ही सर्वश्रेष्ठ समाधान है।

निचला बेतवा बेसिन

- स्थानीय वन क्षेत्र घटने से नदियों के प्रवाह में तेजी आई है। परिणामस्वरूप भूमि की ऊपरी परत का अपरदन बढ़ा है।
- नहरों से नियमित कटान... लीकेज की वजह से कई इलाकों में जल भराव की समस्या है।
- नहरी प्रणाली के विस्तार से जल की मांग बढ़ी है। अधिक सिंचाई से मिट्टी की ऊर्वरा शक्ति और फसल उत्पादन दोनों प्रभावित होंगे।
- नकदी के चक्कर में एक ही तरह की फसल बोने से भूमि का उपजाऊपन घटा है। अतः वर्तमान कृषि प्रणाली को नए सिरे से सुधारने की जरूरत है। बेहतर फसल सुविधाओं और ऊर्वरता प्रबन्धन से ऐसा किया जा सकता है।

सामाजिक पक्ष

- आश्चर्यजनक है कि केन बेसिन में मात्र 5% लोगों को ही केन बेतवा जोड़ की मामूली जानकारी है, जबकि बेतवा बेसिन में जिनसे भी साक्षात्कार किया गया... लगभग सभी को इस परियोजना की जानकारी थी। जिन गणमान्य लोगों से राय ली गई, उनमें से लगभग सभी को इस परियोजना की मोटी-मोटी जानकारी तो थी, लेकिन विवरण कोई नहीं जानता था।
- केन बेसिन के एक भी उत्तरदाता ने यह नहीं माना कि केन में उसकी आवश्यकता से अधिक पानी है। खासकर कभी अत्यन्त उपजाऊ रहा जिला बांदा इस परियोजना को अपने जीवन-मरण का प्रश्न मानता है।
- बेतवा बेसिन के 65% लोग महसूस करते हैं कि उन्हें अतिरिक्त पानी तो चाहिए ही, भले ही वह कहीं से भी आए। 25% उत्तरदाता यदि केन में अतिरिक्त पानी है तो उसे लेने से असहमत नहीं है। 10% लोग इस बारे में दृढ़ है कि उन्हें केन के पानी की जरूरत नहीं है.... वर्षा जल संचयन के परम्परागत ढांचों को समृद्ध कर वे अपना जीवन अच्छे से चला सकते हैं।

अध्ययन के दौरान प्राप्त विशिष्ट बयान

- *कुसुम सिंह मेहदेले* (मंत्री, म.प्र. शासन) – केन का पानी बेतवा बेसिन में ले जाने की कोशिश के पूरी तरह खिलाफ। कहा कि मध्यप्रदेश सरकार केन नहर परियोजना और केन बेसिन में सिंचाई के दूसरे तंत्र स्थापित करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दे।
- *श्रीमती दीपाली रस्तोगी* (जिलाधीश-पन्ना) – पन्ना जिला पहले ही भयानक जल संकट से गुजर रहा है। किसानों की हालत दयनीय है। यहाँ जल स्थानान्तरण की बजाय सिंचाई तंत्र विकसित करने की जरूरत है। स्थानीय जरूरत को देखते हुए केन में अतिरिक्त पानी नहीं है। हमने इस बाबत् सरकार को कई बार लिखा है।
- *श्री उपेन्द्र प्रताप सिंह* (अध्यक्ष जिला पंचायत-पन्ना) – हमारी खेती और पीने के लिए ही पानी नहीं है तो जल स्थानान्तरण का सवाल कहाँ उठता है।
- *श्रीमती बाला देवी* (अध्यक्ष जनपद पंचायत-अजयगढ़) – केन में कहीं ले जाने के लिए कोई अतिरिक्त पानी नहीं है।
- *श्री वीर सिंह* (अध्यक्ष जिला पंचायत-छत्तरपुर) – यदि यह प्रस्ताव लागू होता है तो डेयोढ़न से नीचे की केन धारा सूख जाएगी। यह जिले के लिए मरने जैसा हो जाएगा।
- *श्रीमती संतोष राजे* (अध्यक्ष जनपद पंचायत-राजनगर) – हमारा क्षेत्र ही प्यासा है। पानी स्थानान्तरण का प्रश्न ही नहीं उठता।
- *वीरेन्द्र सिंह पटेल* (अध्यक्ष जनपद पंचायत-पथरिया) – केन का पानी... हमारा पानी है। हमें इसकी जरूरत है।
- *भानसिंह* (अध्यक्ष जिला पंचायत-दमोह) – ऐसा लगता है सरकार केन बेसिन के भविष्य को बंधुआ रखना चाहती है।
- *सोना बाई* (विधायक-पथरिया) – योजना के बारे में आंशिक ज्ञान। कहती हैं कृषि और सिंचाई पर पहल की जानी चाहिए।

हमारा लक्ष्य

जल स्वराज से ग्राम स्वराज

संदर्भिका

1. बूंद-बूंद रो घट भरे
2. थार: मरुभूमि के चमत्कार
3. Charging Climates : The Future CD, The Politics CD,The Impact CD
4. Our Beautiful Planet–1,2
5. The Greenhouse Effect.
6. नदी जोड़ योजना के मायने : वास्तविकता के आइने में (सैण्ड्रम, अप्रेल, 2004)
7. केन-बेतवा नदी जोड़ (सैण्ड्रम, 2004)
8. जब नदी बंधी
9. गंगा को अविरल बहने दो
10. बूंदों की संस्कृति
11. आज भी खरे हैं तालाब
12. राजस्थान की रजत बूंदें
13. Linking of India Rivers by Ramaswami R.Iyer– (Water sovereintly service No.1 March, 2003)
14. Ken-Betwa Link : Why it want work (Dec., 2003)
15. जल सत्याग्रह (तरुण भारत संघ)
11. जलयात्रा
12. "Privatizing of Rivers" - A.K. Singh
13. हमारी नदियाँ–महेन्द्र पाण्डेय, केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड, 1997
14. राष्ट्रीय जलनीति-जनता के सुझाव: तरुण भारत संघ
15. India's Water Treaty-1960
16. Article 21 of Indian Constitution
17. 73rd and 74th Amendments

18. Report of UNICEF and WWF
19. The River Board Act-1956 to Interstate Water Dispute Act. 1956
20. National Water Policy. 1987
21. Report of Jayanta Bandopadhyaya and Sharma Parveeen
22. A Political economic analysis of Indians River interlinking project–Dev Goel.
23. Article: Interlinking Rivers - The Millennial Folly Shailendra Nath Ghosh
24. Article : Interlinking of Rivers Assessing the Justifications by Jayanta Bandopadhyaya & Sharma Parveen
25. Thakkar, Himanshu-Death warrant for India's Rivers, (World Rivers Review, Vol. 18 Aug 10th, 2003)
26. Devils R.J.R, Interlinking of Rivers : Ecologists wake up? Current science 87 (8) : 1030-1031, 2003)
27. Gurjar, B.R. Interlinking of rivers : A climatic view point (current Science 84 (11) : 1381-1382, 2003)
28. Dawies R.J.R. Freshwater Fishes of Peninseular India, (University Press, Hyderabad, 2002)
29. Giller, P.S. and Manicurist, B. The Biology of Strains and Rivers, Oxford University Press, Oxford, 1998)

www.isro.org.
www.envirodebate.net
www.raivwaterharvesting.org.
www.wr.nic.in
www.cess.ae.in
www.riverlink.nic.in
www.riverforlife.net
www.sothasia.media.net.

नदियों को
जोड़ने की बजाय

समाज को
नदियों से जोड़ें।

तरुण भारत संघ